बिना औषधि के कायाकल्प

★

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि-मथुरा-२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

★

२००५ मूल्य : ५-०० रुपये

भूमिका

स्वस्थ रहना मनुष्य का स्वाभाविक अधिकार है। परमात्मा ने हर एक प्राणी को ऐसे साधन देकर भेजा है कि निरोग और स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सके, परंतु हम देखते हैं कि मनुष्य कमजोरी और बीमारी के चंगुल में बुरी तरह जकड़ा हुआ है, जबकि सृष्टि के समस्त प्राणी साधारण बुद्धि रखते हुए भी निरोग रहते हैं। तब मनुष्य को विशेष बुद्धिमान् होने का दावा करते हुए भी इस प्रकार रोग ग्रस्त रहना सचमुच आश्चर्य की बात है।

मनुष्य ने चटोरा, विषयी, कृत्रिम और अप्राकृतिक बनाकर अपने आपको रोगों के गड्ढे में डाल दिया है। अस्वस्थता की दु:खदायक स्थिति उसने स्वयं पैदा की है। अपने इस रवैये को सुधार लिया जाये, तो इस दु:खदायक स्थिति से आसानी के साथ छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है।

स्वाभाविक स्वास्थ्य आज दुर्लभ हो रहा है। निरोगिता का ही दूसरा नाम दीर्घजीवन, स्फूर्ति, बलिष्ठता, साहस, पुरुषार्थ आदि हैं। आज के गिरे हुए स्वास्थ्य वालों को वह स्वाभाविक निरोगिता प्राप्त हो जाये, तो उसे कायाकल्प समझना चाहिए। अस्वस्थता का निवारण और स्वाभाविक स्वास्थ्य की प्राप्ति यही कायाकल्प है। इस कायाकल्प के लिए औषधियों की नहीं प्राकृतिक नियमों के अनुकूल आचरण करने की आवश्यकता है।

इस पुस्तक में प्राकृतिक आहार-विहार की ओर चलने का अनुरोध किया गया है और मुद्दतों से बिगड़े हुए भीतरी अवयव की सफाई करके, उन्हें पुन: चेतना प्राप्त करने की नीतियों से युक्त बनाने का मार्ग बताया गया है। हमारा विश्वास है कि स्वस्थता की दिशा में यह पुस्तक सर्व साधारण के लिए विशेष उपयोगी होगी।

—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

पीछे की ओर लौटो !

सृष्टि के समस्त जीव-जंतुओं की शारीरिक स्थिति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि मनुष्य को छोड़कर अन्य सभी प्राणी स्वस्थ और निरोग जीवन व्यतीत करते हैं। आकाश में विचरते पशु-पक्षी, घास-पात में छिपे रहने वाले कीट-पतंग, वनों में विचरण करने वाले शाकाहारी तथा मांसाहारी पशु, कीट-पतंग हर श्रेणी के जीव सदा स्वस्थ और निरोग रहते हैं। उन्हें न वैद्यों की जरूरत पड़ती है न डॉक्टरों की, न उन्हें चटनी, गोली, क्वाथ, अवलेह, रस से कोई मतलब है और न ही लोशन, पाउडर, एसिड, इंजेक्शन, आपरेशन आदि से कोई संबंध है। यह जीव-जंतु अल्प बुद्धि वाले हैं, आयुर्वेद के मत और डॉक्टरी का भी उन्हें ज्ञान नहीं है, मनुष्य की तुलना शरीर शास्त्र और आरोग्य शास्त्र की जानकारी उन्हें नहीं के बराबर है, फिर भी हम देखते हैं कि कोई पशु-पक्षी दस्त, हैजा, अतिसार, गठिया, बवासीर, ज्वर, खाँसी, प्रमेह, सुजाक, दमा, अंडवृद्धि आदि का शिकार नहीं होता। रोग के कारण रोता हुआ, कराहता हुआ, दु:ख पाता हुआ भी उनमें से कोई नहीं देखा जाता। सृष्टि के सब प्राणी ईश्वर के आनंदमय साम्राज्य में प्रसन्नतापूर्वक किलोलें करते हैं। जिस दिन से जन्म लेते हैं और जिस दिन तक मरते हैं, उस बीच में कभी उन्हें यह अनुभव नहीं होता कि शरीर ही उनको कष्ट दे रहा है। अन्य कष्टों के निवारण के लिए शरीर रूपी शस्त्र मिला हुआ है। यदि यह शस्त्र स्वयं ही कष्टदायक हो तब उससे भला जीवन यात्रा का आनंद किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ?

जबकि ईश्वर के आनंदमय साम्राज्य में कहीं किसी प्राणी को रोगी नहीं बनना पड़ता, तब मनुष्य जाति रोगों का घर क्यों बनी हुई है ? यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है, इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। देखा जाता है कि सौ में से निन्यानवें

आदमी किसी न किसी तीव्र या मंद बीमारी के शिकार हैं। सरकारी अस्पतालों में चक्कर लगाकर, उनकी रिपोर्ट पढ़िये, आपको विचित्र-विचित्र रोगों से पीड़ित असंख्य रोगियों का विवरण मिलेगा। दवादारू की निजी दुकानें खोले हुए लाखों वैद्य, डॉक्टर बैठे हैं, इनके दरबार में भीड़ लगी रहती है। झाड़-फूँक वाले सयाने दिमाग वाले किसी से पीछे नहीं रहते। दवाएँ बनाने और बेचने वाली फर्में सोने-चाँदी की दीवारें जमा कर रही हैं, इनके अतिरिक्त असंख्यों मनुष्य ऐसे हैं; जो शरम, झिझक, गरीबी, अविद्या या साधनहीनता के कारण अपने रोगों को छिपाये रहते हैं। खुद कष्ट सहते रहते हैं, पर भेद प्रकट नहीं करते। लापरवाही, उपेक्षा या असुविधा के कारण अनेकों लोग रोग को भीतर ही भीतर दबाये रहते हैं। जिनके रोग प्रकट हैं, उनकी संख्या बहुत बड़ी है, सौ में से ३५ आदमी ऐसे होते हैं, जिनके रोग प्रकट रूप में दिखाई देते हैं। सौ में से ६४ या ६५ फीसदी लोग ऐसे हैं, जिनका बाहरी ढाँचा तो निरोग जैसा दीखता है, पर भीतर ही भीतर उन्हें घुन लगे हुए हैं। कब्ज, अजीर्ण, मंदाग्नि, दस्त साफ न होना, थकान, शिथिलता, कमजोरी, प्रमेह, स्वप्नदोष, जलन, हड़फूटन, किन्हीं विशेष अंगों में विशेष कमी आदि छुट-पुट मंद रोग ऐसे हैं, जिनसे अधिकांश लोग पीड़ित हैं और रोग के अनुरूप कष्ट या कठिनाई अनुभव करते हैं।

मुश्किल से सौ पीछे एक आदमी ऐसा मिलेगा, जिसे पूर्ण स्वस्थ कहा जा सकेगा। इनके विपरीत जंगली पशु, पक्षी, कीट पतंगों में सौ पीछे कोई एक ऐसा मिलेगा, जिसके रोगी होने का संदेह किया जा सके। रोगों ने मनुष्य को ही घेरा है या यों कहिये कि मनुष्य ने ही रोगों को अपनाया है। आदमी के संपर्क में जो जीव-जंतु आये हैं, उन्हें भी यह छूट मिली है। आदमी ने जिन जानवरों को पालकर अपने संपर्क में लिया है, उनको अपनी इच्छानुसार रहने और काम करने के लिए मजबूर किया है, उनमें भी बीमारियाँ चलने लगी हैं। अब आदमियों की महामारियों की तरह जानवरों में भी बीमारियाँ फैलती हैं और थोड़े ही समय में बहुत से पशु मर जाते हैं। गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी आदि में कभी-कभी

महामारियाँ फैलती हैं। कुत्ते, घोड़े, ऊँट, हाथी, तोते, तीतर आदि भी बीमार रहने लगे हैं और अब इनके लिए "मवेशियों के अस्पताल" खोलने की आवश्यकता पड़ने लगी है, यह सब मनुष्य की संगति का फल है। अपनी कमाई को, बीमारियों को, उसने अपने साथी पशुओं को भी उपहार में दिया है। हाँ, जो जानवर उसके निकट संपर्क से दूर हैं, अपने आहार-विहार रहन-सहन के बारे में स्वतंत्र हैं, वे मनुष्य के उस उपहार को प्राप्त करने से रोगी बनने से अभी बचे हुए हैं। जो जीव आदमी के चंगुल में जिस हद तक फँस जायेगा, उसी हद तक उसे बीमारियों का तोहफा भी मिलता जायेगा।

यह बात सचमुच बड़े आश्चर्य की लगती है कि बुद्धिहीन और साधनहीन होते हुए भी अन्य समस्त जीव निरोग रहते हैं, किंतु अकेला मनुष्य ही ऐसा है, जो बीमारियों की यातना भुगतता है और जिन जीवों को अपने संपर्क में बाँध लेता है, उन्हें भी उसी नरक में घसीटकर पटक देता है।

मनुष्य की बुद्धि बड़ी तीव्र है, उसने अपने बुद्धिबल से बड़े-बड़े आश्चर्यजनक आविष्कार किये हैं, बड़ी-बड़ी मशीनें ईजाद की हैं, ज्ञान विज्ञान की अनेकानेक शोधें की हैं, जिधर देखिये उधर ही मनुष्य की बुद्धि का चमत्कार दिखाई पड़ता है, किंतु जीवन की मूलभूत समस्या स्वास्थ्य के संबंध में उसकी बुद्धिमता न जाने कहाँ गायब हो गई है ? ऐश आराम और भोग-विलास की एक से एक नई अद्‌भुत और अनोखी तरकीब उसने ईजाद की हैं, पर निरोगता एवं दीर्घ जीवन के संबंध में कोई कारगर तरकीब हाथ न आई। इस दिशा में जितने प्रयत्न किये गये, वे लाभ के स्थान पर प्रायः हानिकारक ही सिद्ध हुए।

स्वास्थ्य संबंधी इस विषम स्थिति पर गंभीर विवेचन करने से प्रतीत होता है कि प्राणी का जीवन प्रकृति के नियमों के साथ बड़े मजबूत सूत्रों के साथ बँधा हुआ है। जीवन निर्माण करने वाली सत्ता ने उसे सुसंचालित रखने के लिए एक नियम शृंखला का भी निर्माण किया है। इन नियमों का जो प्राणी जिस हद तक पालन

करता है, वह उतना ही निरोग रहता है, जो उन्हें जितना तोड़ता है वह उतना ही रोगों के चंगुल में फँसता है। मनुष्य की चालाकी, अक्लमंदी, प्रकृति माता के साथ सफल नहीं होती। प्रकृति माता जितनी दयालु है उतनी ही निष्ठुर भी है, उसके नियमों का पालन करने वाला आनंदमय जीवन का उपहार पाता है और जो उन नियमों को तोड़ता है वह दंड पाता है राजकीय कानूनों को तोड़ने वाला किन्हीं तरकीबों से बच भी जाता है, परंतु प्रकृति को धोखा देना कठिन है।

प्रकृति के नियम इतने स्पष्ट खुले हुए, सर्वविदित और स्वाभाविक हैं कि उन्हें जानने के लिए किन्हीं ग्रंथों के पढ़ने की या अन्वेषणशालाओं में जाने की जरूरत नहीं है। दस इंद्रियाँ और ग्यारहवीं विवेक बुद्धि यह ऐसी उत्तम कसौटियाँ हैं, जो एक क्षण में यह बता देती हैं कि शरीर को ठीक रखने के लिए क्या ठीक है ? क्या ठीक नहीं है ? खरे और खोटे की पहचान करने में उन्हें जरा भी देर नहीं लगती। उपयोगी और अनुपयोगी का भेद वे तुरंत ही कर देती हैं। इंद्रियों के चैतन्य ज्ञान-तंतुओं को अपने स्वाभाविक रूप से, स्वतंत्रतापूर्वक, बिना धोखे में डाले काम करने दिया जाय, तो वे अक्षय आरोग्य के लिए हमारा ठीक-ठीक पथ प्रदर्शन कर सकते हैं।

सृष्टि के अन्य जीव अपनी इंद्रियों के प्रकृति प्रदत्त ज्ञान के ऊपर पूर्णतया निर्भर रहते हैं और स्वास्थ्य सुख का अक्षय उपभोग करते हैं। जिस आहार को उनकी इंद्रियाँ स्वीकार करती हैं, उन्हें ही ग्रहण करते हैं; अन्य वस्तुओं को छूते तक नहीं। बकरी आक के पत्ते खाती है, पर यदि वे गाय को दिये जायें, तो वह भूखी भले ही मर जाय, पर उनको स्वीकार न करेगी। भेड़िया मांस खाता है, पर यदि भैंस को मांस दिया जाय, तो वह उसे छुएगी भी नहीं। तोता मिर्च खाता है, पर कबूतर उसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकता। मुख के दरवाजे पर जिह्वा रूपी चौकीदार प्रकृति ने बिठा दिया है, जो यह जाँचता रहता है कि किसे भीतर जाने देना चाहिए, किसे न जाने देना चाहिए ? जिह्वा वह डॉक्टर है, वह वैज्ञानिक है

जिसकी कसौटी कभी गलत नहीं हो सकती। पर मनुष्य अपनी अक्लमंदी इस चौकीदार को धोखा देने में, भ्रम में डालने में, निद्रित, असमर्थ या बेहोश करने में खर्च करते हैं। निरंतर अत्याचारों को सहते-सहते फिर इंद्रियाँ भी उसी ढाँचे में ढलने लगती हैं और हानिकारक आहार में उतना विरोध नहीं करतीं, जितना कि करना चाहिए।

थोड़ी उम्र का बालक जिसका जिह्वा का ज्ञान अभी ठीक तरह नहीं है, उसके सामने खाद्य पदार्थ रखिये, वह उनमें से उचित को ही ग्रहण करेगा। दूध, फल, मेवा आदि को वह खुशी-खुशी खायेगा किंतु मिर्च, मसाले, मांस, चर्बी, तेल आदि ग्रहण न करेगा। रोज-रोज के अत्याचारों से बुरी आदत डाल लेने पर भी जिह्वा मिर्च खाते समय जलती है, बहुत-से पदार्थ ऐसे हैं, जो अपने असली रूप में नहीं खाये जा सकते, पर उनमें अनेक तरकीबें करके मिर्च-मसाले, शक्कर आदि मिलाकर ऐसा बना लिया जाता है कि जिह्वा उसके असली रूप को पहचान नहीं पाती। मांस को उसके असली रूप में मुँह में रखा जाय, तो वह कच्चा मांस शायद किसी से न खाया जायेगा, पर जब अनेक तरकीबों से उसे उबालकर, भूनकर, जलाकर, सुखाकर घी, मसाले मिलाकर और न जाने क्या-क्या तरकीबें करके उसे कुछ का कुछ कर दिया जाता है, तब वह किसी प्रकार पेट में पहुँचाने योग्य होता है। तंबाकू, अफीम, शराब, मांस, चरस आदि नशीले पदार्थ भी ऐसे ही हैं, इन्हें खाते हुए जिह्वा कुछ आनंद अनुभव नहीं करती, पर आदत के मारे लोग बलात् उन्हें भी पेट में पहुँचाते हैं। यह सब जिह्वा-इंद्रिय पर अत्याचार है। प्रकृति के चौकीदार पर अत्याचार करने वाला दंड से बच नहीं सकता, यह दंड उसे बीमारी के रूप में मिलता है।

नाक बदबूदार जगह में वहाँ की दुर्गंध को सूँघते ही हमें आदेश करती है कि यहाँ से भागो; यहाँ की वायु हानिकारक है। बगीचों की सुगंध या स्वास्थ्यकर वायु में नाक प्रसन्नता अनुभव करती है, मानो वह बताती है कि यहाँ की वायु हमारे लिए उपयुक्त है। आँखें भी घृणित, घिनौनी, वीभत्स, गंदी वस्तुओं को देखने में

नफरत और सुंदर, चैतन्य, सरस, सुहावनी, सुव्यवस्थित, सतेज वस्तुओं में अनुराग प्रकट करती है। उनकी यह परख हमारे लिये हानि और लाभ का स्पष्ट संकेत है। कान भी हानिकर, भयंकर, कर्कश, कटु शब्दों को सुनकर अरुचि और मुधर ध्वनिमय, आनंददायक शब्दों को सुनकर रुचि प्रकट करते हैं। यह परीक्षण शक्ति हर इंद्रिय में होती है, परंतु यदि रोज-रोज बुरी तरह अभ्यास कराया जाए, तो इंद्रियाँ उस बुराई की भी आदी हो जाती हैं। काम सेवन के विषय को ही लीजिए कि सृष्टि के समस्त जीवों में नर, मादा साथ-साथ रहते हैं, परंतु नर तभी काम सेवन के लिए प्रस्तुत होता है, जब मादा को उसकी इच्छा होती है। मादा भी गर्भ धारण करने की आवश्यकता के लिए उत्तेजित होती है और जैसे ही वह आवश्यकता पूरी हुई कि एक लंबे अर्से के लिए-जब तक फिर गर्भ धारण करने की आवश्यकता न पड़े, तब तक के लिए बिल्कुल शांत हो जाती है। इस बीच में नर-मादा साथ-साथ रहते हैं, पर काम प्रस्ताव कोई नहीं करता। इस विषय में भी मनुष्य प्राणी ने अपनी विचित्र स्थिति बना ली है। प्रायः सभी इंद्रियों का दुरुपयोग होता है। अखाद्य खाना, गंदी अस्वास्थ्यकर वायु में रहना, घृणित, गंदे, कुरूप पदार्थों को आँखों में गड़ाये रहना, कटु, कर्कश, शांति भंग करने वाले, अरुचिकर शब्द-ध्वनियों का श्रवण करना, अमर्यादित और अति काम सेवन करना, यह सब बातें इंद्रियों की उचित मर्यादा को तोड़ने वाली हैं, ऐसा जीवन भला निरोग किस प्रकार रह सकता है ?

दिन में सोना, रात को जागना, तेज बिजली के प्रकाश में आँखें गड़ाये रहना, गर्द, गुबार, धुआँ, गर्मी, गंदगी से भरे हुए वातावरण में रहना, यह सब प्रकृति के नियमों को तोड़ना है। शरीर की त्वचा की बनावट स्वाभाविक ऐसी है कि सर्दी-गर्मी से शरीर का बचाव वह कर सकती है। छोटे से छोटे और कमजोर से कमजोर प्राणी भी खुले बदन सर्दी-गर्मी में घूमते-फिरते हैं, पर किसी को न तो निमोनिया होता है और न लू लगती है। फैशन-परस्ती के कारण कपड़ों की भरमार करके, बनियान, कमीज, बास्कट, कोट,

ओवरकोट, एक के ऊपर एक पाँच-पाँच कपड़े, हर एक कपड़े में दो-दो, तीन-तीन परत इस प्रकार १०-१५ पर्तों से शरीर को ढके रहने से त्वचा की चैतन्यता नष्ट हो जाती है, भीतर ही खराब हवा जो त्वचा में से निकलती है, कपड़ों में रुककर शरीर को घेरे ही पड़ी रहती है। बाहर की स्वच्छ प्राणप्रद वायु कपड़ों की रुकावट के कारण त्वचा तक पहुँच नहीं पाती। जैसे बंद कोठरी में उगे हुए पौधे स्वच्छ वायु के अभाव में पीले पड़ जाते हैं और मुर्झा जाते हैं, वही हालत कपड़ों की भरमार के कारण हमारे शरीर की होती है। मुँह, नाक, कान, चेहरा, गर्दन, हाथों के पंजे आदि जो स्थान सदा खुले रहते हैं, उन्हें सर्दी या गर्मी का कोई विशेष अनुभव नहीं होता, इसी प्रकार यदि सारी देह खुली रहे, तो कुछ हानि नहीं, साधु, संन्यासी, किसान तथा जंगली जातियों के लोग प्रायः खुले बदन रहते भी हैं, उन्हें सर्दी-गर्मी का कुछ कष्ट नहीं होता। कपड़ों की भरमार सर्दी-गर्मी से बचने के लिए नहीं, वरन् फैशन के कारण की जाती है और यह फैशन परस्ती अंततः हानिकारक ही सिद्ध होती है।

तेज सवारियों पर बैठना भी ऐसा ही है। प्राचीन काल में ऐसे वैज्ञानिक मौजूद थे; जो मोटर, रेल जैसी तेज चलने वाली सवारियाँ बना सकते थे, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से उन्हें हानिकर देखकर ही उस समय इनका निर्माण नहीं किया गया था। बात यह है कि दस-दस, पंद्रह-पंद्रह मील की दूरी पर जलवायु में अंतर पड़ता जाता है। एक जगह का आदमी सुदूर स्थान में जब पहुँच जाता है और वहाँ रहता है, तो अक्सर वहाँ की जलवायु उसके अनुकूल नहीं पड़ती और बीमार हो जाता है। उस स्थान के निवासियों के लिए वह स्थान ठीक था, जलवायु भी अनुकूल थी, पर नये आदमी के लिए वह अनुकूल न पड़ी। इसका कारण अकस्मात् एकदम जलवायु का बहुत बड़ा परिवर्तन हो जाता है। जैसे ठंडे कमरे में से निकलकर तेज लू में चले जाने से या भारी गर्मी में से आकर एकदम स्नान कर लेने से नुकसान होता है, उसी प्रकार जलवायु का बहुत दूरी का अंतर भी ऐसे ही उपद्रव खड़े करता है। पहले

जमाने में पैदल या घोड़ा, ऊँट, बैल आदि की सवारी पर लोग चलते थे, थोड़ा-थोड़ा, जलवायु नित्य बदलता था, वह क्रमशः सहन होता जाता था और बड़ी बड़ी यात्राएँ भी निर्विघ्न पूरी हो जाती थीं, पर आज कश्मीर के ठंडे प्रदेश में हर तीन रोज बाद और सिंध के रेगिस्तान में तेज़ सवारियाँ ऐसे ही अवसर उपस्थित करती हैं, जो स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल पड़ते हैं।

कृत्रिमता ने, नई-नई तरकीबों के खेल ने मनुष्य की सामाजिक उन्नति भले ही की हो, परंतु इस रीति ने स्वास्थ्य को बराबर गिराया है। पूर्व काल में वन-उपवनों में रहने वाले हमारे पूजनीय पूर्वज आज के जितने आविष्कारों का कौतुक देखने से वंचित थे, तो भी वे शारीरिक दृष्टि से पूर्ण सुखी थे। निरोगिता, बल, शालीनता, पराक्रम, पौरुष और दीर्घ जीवन उनको पूर्ण रूपेण उपलब्ध थे। प्राचीनकाल से असाधारण पराक्रमी पुरुषों के पौरुष से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। पुरातत्त्व विद्या के अन्वेषकों को पाँच हज़ार वर्ष पुराने जो नर-कंकाल मिले हैं, उनसे सिद्ध होता है कि उस समय मनुष्य की लंबाई करीब ८ फुट होती थी, वजन में लगभग तीन मन होते थे। इतनी पुरानी बात को छोड़िये, अभी कुछ समय पूर्व सौ-दो सौ वर्ष पहले के पुरखा जितना खाते थे, जितना काम करते थे, जितने स्वस्थ रहते थे, जितने अधिक जीते थे, आज के लिए वह सच भी आश्चर्यजनक है। ६-७ सेर भोजन करने वाले ४०-५० मील पैदल चलने वाले, १००-१५० वर्ष जीने वाले लोग अब से कुछ ही समय पहले बहुत काफी संख्या में थे, पर अब तो एक शताब्दी में ही वे सब बातें असंभव-सी दीखने लगी हैं।

फैशनपरस्ती, कृत्रिमता, बनावट एवं प्रकृति विरुद्ध आहार-विहार ने मनुष्य के स्वास्थ्य और दीर्घजीवन को छीना है यह क्रम यदि न बदला, तो आगामी शताब्दी तक वैसे ही बौने, छोटे, अल्पजीवी मनुष्य रह जाएँगे जैसे कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने उत्तरकांड में कलियुग के अंत में होने वाले मनुष्यों के संबंध में भविष्यवाणी की है। कुदरत के विरुद्ध आचरण करना मनुष्य के जीवन के मूल आधार को, स्वास्थ्य को चौपट करता जायेगा। जब

तक यह प्रवाह न रुकेगा, मानव जाति की बीमारी और वेदनाओं में किसी प्रकार की कमी न होगी वरन् बढ़ोत्तरी ही होती जायेगी।

इसलिये बीमारी और निर्बलता से सताये हुए, शारीरिक पीड़ाओं और असमर्थताओं में तड़पते हुए लोगों को एक बात कान खोलकर सुन लेनी चाहिए, सुनकर गिरह बाँध लेनी चाहिए कि प्रकृति के कानूनों को तोड़ने में नहीं वरन् पालन करने में ही उनका कल्याण है। फैशन, कृत्रिमता और भौतिक विज्ञान की चमक-दमक का कौतुक कुछ मनोरंजन तो करा सकता है, पर जीवन के सच्चे आनंद में बढ़ोत्तरी नहीं कर सकता। डॉक्टर की रंग-बिरंगी औषधियाँ निरोगता की वृद्धि में कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकी हैं और आगे भी कोई तरकीब कामयाब न होगी। प्रकृति माता से लड़कर नहीं, उसके आज्ञाकारी बालक बनकर ही हम उससे जीवनदान प्राप्त कर सकते हैं।

यह ठीक है कि मनुष्य समाज आज ऐसी परिस्थिति में आ गया है, कि प्रकृति, रहन-सहन, आहार-विहार के अनुसार पूर्ण रूप से आचरण करना शक्य नहीं है परंतु यह भी ठीक है कि जितनी कृत्रिमता को झूठी फैशन, शेखी और चटोरपन के कारण बढ़ा लिया गया है, उसमें बहुत कुछ कमी की जा सकती है। सात्विकता, स्वाभाविकता और आवश्यकता का ध्यान रखकर यदि जीवन क्रम चलाने की नीति को अपना लिया जाय, तो खान-पान और रहन-सहन के बहुत सारे आडंबर, जो आज फैशन और सभ्यता के आधार मालूम पड़ते हैं, तब व्यर्थ, निरर्थक और भार स्वरूप प्रतीत होंगे और उनका शीघ्र से शीघ्र परित्याग कर देने की इच्छा होगी।

कायाकल्प की इच्छा करने वालों ! स्वस्थ और निरोग जीवन की आकांक्षा करने वालों ! इस कृत्रिमतामय प्रकृति विरुद्ध आहार-विहार से मुँह मोड़ो और पीछे की ओर लौट चलो। उसी मार्ग को अपनाओ, जिसे हमारे पूजनीय पूर्वजों ने अपनाया था। चलो, इन बनावटी और तड़क-भड़क की कृत्रिमताओं से पीछे की ओर लौट चलें। चलो ! सादगी का, सरल और निर्दोष जीवन बिताएँ। चलो ! प्रकृति माता के चरणों में खड़े होकर अपनी भूल

का प्रायश्चित करें और उससे स्वास्थ्य और जीवन का दूध माँगें। दयालु माता हमें दूध पिलायेगी और उससे हमारा कल्याण हो जायेगा। औचित्य, आवश्यकता और जीवन रक्षा को सामने रखकर आहार-विहार का क्रम रखा जाय, तो बहुत सारी निरर्थक, हानिकारक एवं अप्राकृतिक बात से सहज ही छुटकारा मिल सकता है।

□□

उत्तम स्वास्थ्य के चार सूत्र

हमें यही भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि शरीर को प्रकृति के अनुकूल नियमों के अनुसार चलाने पर ही उत्तम स्वास्थ्य का होना निर्भर है। बीमारी और कमजोरी से छुटकारा पाने के लिए दवा-दारू या बढ़िया पौष्टिक कहलाने वाले पदार्थों का आश्रय लेने की नहीं वरन् पाचन शक्ति ठीक न हो, तो कीमती से कीमती ताकतवर कहे जाने वाले पदार्थ भी कुछ लाभ न पहुँचा सकेंगे। वे पेट में जाएँगे और बिना पचे मल द्वार से निकल जायेंगे, यदि उनका पाचन ही न हुआ, रस रक्त ही न बना तो फिर उनके द्वारा पोषण कैसे होगा ? बल कैसे बढ़ेगा ? यदि हाजमा दुरुस्त हो तो साधारण-सा भोजन भी भरपूर बल प्रदान कर सकता है। दुंबा-मेंढ़ा को देखिये—घास खाता है और उसमें से ही कितनी चर्बी जमा कर लेता है। सुअर को मक्खन, मलाई, दूध, रबड़ी खाने को नहीं मिलती, वह बेचारा ऐसे पदार्थ खाता है, जिसमें पौष्टिक तत्त्वों की मात्रा बहुत थोड़ी होती है, फिर भी वह अपनी पाचन शक्ति द्वारा उस साधारण से भोजन में से ही अपने शरीर को इतना पुष्ट कर लेता है। अन्य जानवरों को देखिये— भैंसे, बैल, घोड़े, हाथी आदि जीवों को मेवा-मिठाई के थाल नहीं परोसे जाते और न उन्हें ताकत की गोलियाँ, धातुपुष्टि की वटी ही खाने को मिलती हैं, फिर भी वे

पूर्ण बलवान् होते हैं, मामूली घास-पात से ही उन्हें पर्याप्त रक्त मांस प्राप्त हो जाता है।

किन खाद्य पदार्थों में कितने विटामिन हैं ? कौन चीज कितनी ताकतवर है ? इस झमेले में पड़ने की अपेक्षा यह देखना चाहिए कि पाचन शक्ति ठीक काम करती है कि नहीं ? यदि पेट ठीक काम न करता हो, तो सारी कमजोरी और बीमारी की जड़ वही समझनी चाहिए और उसी स्थान पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। किसान जौ की रोटी, चने के साग से खाकर हट्टा-कट्टा रहता है, बारह घंटे काम करता है और रात को मीठी नींद का आनंद लेता है, किंतु एक शहरी बाबूजी चुन-चुनकर बढ़िया-बढ़िया कीमती चीजों की कटोरियाँ थाल में लगाते हैं, घी, रबड़ी, मिठाई, अचार, चटनी, विचित्र-विचित्र साग-तरकारी खाते हैं, नित्य नये टॉनिक पीते हैं, फिर भी मुर्झाये हुए, कमजोर दुबले-पतले बने ही रहते हैं। ६ घंटे दफ्तर में बैठने से ही थक जाते हैं। रात को सिर दर्द करता रहता है, अच्छी तरह नींद नहीं आती। यह सब पाचन शक्ति का खेल है। खाद्य-पदार्थों में बल नहीं है—पाचन शक्ति में बल है। मुख, आमाशय, जिगर, आँत आदि अवयवों में से जो पाचन रस निकलते हैं, वे ऐसे जादू भरे हैं कि भोजन के साथ मिलकर वे उसे अपनी आवश्यकता पूरी करने वाला बना लेते हैं। दुंबा मेंढ़ा के पाचक रस घास को ऐसा बना लेते हैं कि उसके द्वारा शरीर में पर्याप्त चर्बी बन जाय। पाचन शक्ति ठीक हो तो मनुष्य भी अपने बलवर्धक सारे तत्त्व साधारण भोजन में से ही प्राप्त कर सकता है।

कायाकल्प के इच्छुकों को पहली बात यह ध्यान में रखने की है कि कृत्रिमता से पीछा छुड़ाकर सादा, सरल, सात्त्विक एवं प्रकृति के रहन-सहन अपनाएँ। दूसरी बात जो ध्यान में रखनी है, वह यह है कि पाचन शक्ति को ठीक करने का प्रयत्न करें। पाचन शक्ति ठीक है या नहीं, इसके लिये यह देखना चाहिए कि नियत समय पर भूख लगती है या नहीं ? खाया हुआ आहार ठीक प्रकार पचता है या नहीं ? दस्त साफ होता है या नहीं ? यदि यह बातें ठीक

नहीं हैं, तो ठीक करने का और यदि ठीक हैं तो उन्हें आगे भी कायम रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

पाचन का ठीक रहना चार बातों के ऊपर निर्भर है—(१) खाद्य पदार्थों का चुनाव, (२) खाने का तरीका, (३) उचित परिश्रम, (४) अव्यवस्था से बचाव। इन चार बातों का ठीक प्रकार ध्यान रखा जाये, तो पाचन शक्ति सदा ठीक रहेगी, यदि उसमें कोई दोष होगा; तो वह भी बहुत जल्दी दूर हो जायेगा। अब इन चारों बातों पर थोड़ा प्रकाश डाला जाता है।

(१) खाद्य पदार्थों का चुनाव—मनुष्य बंदर से मिलता-जुलता प्राणी है। बंदरों का आहार फल है। शरीरशास्त्रियों ने मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ भोजन फल निर्धारित किया है। इससे अधिक अच्छा लाभदायक, शीघ्र पचने वाला, जीवनी शक्ति बढ़ाने वाला एवं शुद्ध रक्त उत्पन्न करने वाला और कोई पदार्थ नहीं है। जिन पदार्थों में जितना अधिक जीवन होगा, ये उतना ही अधिक जीवन प्रदान करेंगे। शास्त्र कहता है कि—**'जीवो जीवस्य भोजनम्'** जीव का जीवित पदार्थ ही भोजन है। जिसमें जीवन जितना कम होगा, वह उतना ही कम पोषक होगा। दूध और फल जीवित पदार्थों में मनुष्य के लिए पहले दर्जे के खाद्य पदार्थ हैं। ये सरस और सजीव तो हैं ही, साथ ही वे इंद्रियों की रुचि के अनुकूल भी हैं। इसके बाद शाक-तरकारियों का नंबर आता है। वे सजीव तो हैं, पर स्वादेंद्रिय के अनुकूल नहीं हैं। अपने प्राकृतिक रूप में वे खाने योग्य नहीं होते। लौकी, तोरई, कद्दू, रतालू, आलू, अरबी, बैंगन, जिमीकंद, टिंडे आदि कच्चे नहीं खाये जाते, उन्हें आग पर पकाने की जरूरत पड़ती है। पर कुछ शाक ऐसे भी हैं, जो कच्चे रूप में खाये जा सकते हैं जैसे—टमाटर, गाजर, मूली, खीरा, ककड़ी, भिंडी आदि। इसके बाद सूखे हुए पदार्थों का नंबर है। अनाज, मेवे आदि इसी श्रेणी में आते हैं। सूखे हुए पदार्थों का रस नष्ट हो जाने के कारण वे उतने लाभदायक नहीं रहते, सूखे अन्न की अपेक्षा हरे अन्न अच्छे हैं। चना, मटर, बाजरा, ज्वार, गेहूँ आदि अपनी कच्ची अवस्था में अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक होते हैं। सूखे मेवों में हरे मेवे अच्छे

हैं। सूखे छुआरे की अपेक्षा गीली खजूर, दाख, किशमिश की अपेक्षा अंगूर, सूखे नारियल की अपेक्षा कच्चा नारियल निश्चय ही लाभदायक है।

जिसमें जितनी कम अक्लमंदी खर्च की गई है, जो जितने अंशों में सजीव और प्रकृति अनुसार हैं, वह उतने ही अंशों में अच्छा है। गेहूँ या चना पानी में भिगोकर जब अंकुर उत्पन्न हो जाये—सजीवता फिर वापिस आ जाये, तब उसका खाना अच्छा है, इसके बाद मोटी दलिया अच्छा है, उसके पीछे बिना छने आटे की रोटी है, छने हुए आटे की रोटी उसके बाद है, मैदा की रोटी उससे भी खराब है। कारण यह है कि अनाज में अपने प्राकृतिक रूप से जितना दूर ले जाया जायेगा, उसकी असली शक्ल को जितना बिगाड़ा जायेगा, उतना ही वह हानिकारक होता जायेगा। दलिया जल्दी हजम हो जाता है, क्योंकि उसमें अनाज को थोड़ा बहुत ही तोड़ा-मरोड़ा गया है, मैदा बनाने में उसका कचूमर निकाल दिया जाता है, फलस्वरूप वह देर में हजम होने वाला कब्जकारक बन जाता है। घी, तेल में तलने, भूनने, पकाने से उसके उपयोगी तत्त्व और भी अधिक नष्ट हो जाते हैं इसलिये रोटी की अपेक्षा पूड़ी, पकवान और अधिक सारहीन हो जाते हैं। दूध के उपयोगी तत्त्वों को अग्नि द्वारा नष्ट करके जब उसका खोया बना लिया जाता है, तो वह हानिकारक हो जाता है। गन्ने को चूस-चूसकर खाना जितना अच्छा है, चीनी, बूरा या मिठाई में यह बात नहीं रहती है। कारण स्पष्ट है, जिसमें जितनी अक्लमंदी खर्च की जायेगी, जितना तोड़ा-मरोड़ा जायेगा, सुखाया जायेगा उतना ही वह पदार्थ अपने उपयोगी अंशों को खोता जायेगा।

उपयोगी-अनुपयोगी पदार्थों की परीक्षा करते समय यह देखना चाहिए कि यह पदार्थ अपने प्राकृतिक रूप में स्वादेंद्रिय के अनुकूल है या नहीं ? सरस और सजीव है या नहीं ? इस कसौटी पर खरे उतरे हुए पदार्थ अव्वल दर्जे के लाभदायक माने जायेंगे। अनार, अंगूर, सेव आदि कुछ फल ऐसे हैं, जिन्हें अमीर लोग ही पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करते हैं, पर बहुत-से फल ऐसे भी हैं, जो

मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए या गरीबों के लिए भी सुगम हो सकते हैं। संतरा, अमरूद, नीबू, पपीता, रसभरी, आम, जामुन, फालसा, बेर, खरबूजा, तरबूज, गाजर, टमाटर, भिंडी, ककड़ी, खीरा आदि ऐसे फल हैं, जो अधिक महँगे नहीं पड़ते, गरीब आदमी भी उन्हें ले सकता है। कच्चे अन्नों में चना, मटर और बाजरा, गेहूँ आदि बड़े स्वादिष्ट लगते हैं, उन्हें थोड़ा-सा आग पर तपा लिया जाय, तो स्वाद में और भी वृद्धि हो जाती है। इसके बाद वे शाक रद्द हो जाते हैं, जो कच्चे नहीं खाये जा सकते हैं। जैसे—लौकी, तोरई, परवल, पालक, मेंथी, आलू आदि इन्हें उबालकर काम में लाना चाहिए। छिलके उतारने या उबालकर उनका रस निचोड़ देने का तरीका बहुत बुरा है। हर एक फल, शाक, अन्न में उसका छिलका अधिक शक्तिसंपन्न पोषक एवं गुणकारक होता है। आम, अनार, संतरा, खरबूजा, तरबूज जैसे जिन फलों का छिलका फेंके बिना काम न चलता हो, उन्हें छोड़कर अन्य फल या शाकों के छिलके न उतारने चाहिए। गेहूँ की भुसी या दालों के छिलके उतार देने से उनकी ताकत आधी रह जाती है। यही बात शाक या फलों के बारे में है। उबालकर रस निचोड़ देने से उसका सार भाग तो निकल जाता है, छूँछ खाने को मिलती है। शाकों को भुर्ता बनाकर या बिना निचोड़े वैसे ही पका लेना चाहिए। मिर्च-मसाले आदि से अंत तक हानिकारक हैं। जितना नमक शरीर के लिए चाहिए उतना अन्न, शाक और फलों में पहले से ही मौजूद है। काम न चलता हो तो थोड़ा नमक मिला लेना चाहिए। मिर्च मसाले तो जितने कम लिये जाएँ उतनी ही भलाई है।

अन्नों में जौ एक ऐसा है जिसका छिलका फेंकने की जरूरत पड़ती है। बाकी सभी अन्न छिलके समेत काम में लाने चाहिए। दलिया बनाकर खाने का तरीका अच्छा है। दूध या छाछ के साथ पकाकर भी दलिया बनाया जा सकता है। मूँग, मसूर आदि को बिना दले यदि साबुत दाल पका ली जाये, तो वह अधिक ठीक है। रोटी बनानी हो तो मोटी बनानी चाहिए और मंद आग पर पकानी चाहिए एवं गरम रहने देनी चाहिए। बहुत पतली, तेज आग पर

सेंकी हुई, कड़ी या करारी रोटी हानिकारक होती है, क्योंकि उसके उपयोगी तत्त्व जल जाते हैं। शाक दाल को घी, तेल में भून डालने से उनकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। एक साथ कई तरह के साग, दाल खाना ठीक नहीं। विभिन्न प्रकार के पदार्थों के पचने का ढंग अलग-अलग होता है, इसलिए एक साथ बहुत-सी चीजें मिलाकर खाने से पाचन कार्य में गड़बड़ी पड़ती है। रोटी के साथ एक दाल या एक साग काफी है। थाल को कटोरियों से सजाने की प्रथा स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है।

फल, दूध, दही, छाछ एवं साग का भोजन में प्रमुख स्थान होना चाहिए। अन्न को खिचड़ी, दलिया आदि के सरस रूप में लेने का प्रयत्न करना चाहिए। सारे भोजन में आधे से कम रोटी का परिमाण रहे तो अच्छा है। सात्त्विक और सरस भोजन सबसे अधिक बलवर्धक है, क्योंकि वह जल्दी पच जाता है। जो जल्दी पचेगा, ठीक पचेगा, उसका शुद्ध रस और रक्त बनेगा। शुद्ध रस-रक्त बनना ही आरोग्यता और शक्तिशाली बनने का आधार है। स्वाद या कीमत के आधार पर बढ़िया कहे जाने वाले पदार्थ वास्तव में बढ़िया नहीं घटिया है। पकवान, मिठाइयाँ, घी, खोवा आदि से भरी हुई चीजें गरिष्ठ, उत्तेजक एवं उपयोगी तत्त्वों से रहित चीजें चटोरेपन के आधार पर पेट में ठूँस ली जाती हैं, परंतु वे ठीक तरह पचती नहीं, पचने में पेट की बहुत अधिक शक्ति खर्च करा लेती है, पेट में सड़ती हैं, पाचन अंगों को निर्बल बनाती हैं, उनसे जो थोड़ा बहुत रक्त बनता है, वह भी अशुद्ध होता है। इस प्रकार यह गरिष्ठ महँगे और अधिक अक्लमंदी खर्च किये हुए पदार्थ सब दृष्टियों में खराब बैठते हैं। चटोरेपन के कारण उनकी मात्रा भी पेट में अधिक पहुँच जाती है, जो और भी अधिक दुःखदायी है।

बाजार में बिकने वाले खाद्य पदार्थ तो और भी बुरे होते हैं। दुकानदार लोग अपने लाभ में इतने डूब जाते हैं कि ग्राहकों के स्वास्थ्य की बात का उन्हें जरा भी ध्यान नहीं रहता। बाजार के हलुए से घर का सत्तू लाख दर्जे अच्छा होता है। चटोरेपन के

कारण खोमचे वालों या दुकानदारों के दोने चाटना स्वास्थ्य की दृष्टि से एक घातक आदत है। मांस, मदिरा, अंडे, मछली, धूम्रपान, भांग, तंबाकू इनका मनुष्य के आहार में कोई स्थान नहीं है। यह विजातीय, अवैज्ञानिक, तामसिक पदार्थ शरीर और मन के ऊपर अपना घातक असर डाले बिना नहीं रहते। इनसे सदा ही बचते रहना चाहिए और अगर इनमें से किसी का चस्का लग गया हो, तो उसे तुरंत छोड़ देना चाहिए।

(२) **खाने का तरीका**—खाद्य पदार्थों की उत्तमता का जितना महत्त्व है, उससे अधिक महत्त्व खाने के तरीके का है। ठीक तरीके से खाने पर साधारण वस्तुएँ भी बहुत अधिक उपयोगी हो जाती हैं और यदि गलत तरीके से उत्तम वस्तुओं को खाया जाये, तो उसका महत्त्व नष्ट हो जाता है। खाने के तरीकों में तीन प्रश्नों पर ध्यान रखने की आवश्यकता होती है—(१) कब खाया जाय ? (२) कितना खाया जाय ? (३) कैसे खाया जाय ? इन बातों पर ध्यान रखा जाये, तो साधारण भोजन को भी लाभदायक बनाया जा सकता है।

कब खाया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है कि अपने असली रूप में स्वादेंद्रिय का प्रिय, रसीले और कम से कम अक्लमंदी खर्च किया हुआ भोजन खाना चाहिए। कब खाया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—(१) नियत समय पर और (२) खूब भूख लगने पर खाया जाए। दोनों बातें जिस समय हों तब खाया जाए। साधारणतः स्वस्थ आदमी के लिए दिन में दो बार भोजन करना पर्याप्त होता है। यह समय सुबह ११ बजे और शाम को ६ बजे के करीब का होता है। सुविधानुसार इसमें थोड़ी घट-बढ़ भी की जा सकती है। नियत समय पर भोजन करने की आदत बड़ी अच्छी है। जो कुछ खाना हो नियत समय पर खा लेना चाहिए। फिर जब तक दूसरा समय न आए तब तक कुछ न खाना चाहिए। सारे दिन मुँह चलाते रहने की आदत बहुत बुरी है, इससे पाचन कार्य ठीक प्रकार नहीं होता है। एक हांडी में चावल पकाने को रखे जाएँ और थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसमें

थोड़े-थोड़े चावल डालते रहा जाय, तो परिणाम यह होगा कि कुछ चावल जरूरत से ज्यादा पक जाएँगे, कुछ अधपके रहेंगे और कुछ कच्चे रहेंगे। ऐसे बेढंगे तरीके से पकाई हुई हांडी कभी ठीक तरह न पकेगी। यही बात पेट के संबंध में है, एक बार नियत समय में भोजन कर लिया जाये, तो वह अपने समय तक ठीक प्रकार पच जाता है, बीच-बीच में खाना एक प्रकार से पाचन-क्रिया की व्यवस्था को बिगाड़ना है।

जब खूब कड़ाके की भूख लगे, पेट खाली मालूम हो तब खाना चाहिए। अगर नियत समय पर भूख न लगे, तो उस समय की छुट्टी कर देनी चाहिए। दूसरे समय तक कुछ न खाना चाहिए। जैसे सबेरे १० बजे भूख न लगी तो शाम को ६ बजे तक कुछ न खाना चाहिए। यह तरीका गलत है कि १० बजे भूख न लगी फिर दो बजे लगी तो दो बजे ही खा लिया, इससे क्रम बिगड़ता है आदत खराब होती है। नियत समय पर भूख न लगने के मानी पेट में कोई खराबी होना है, उस खराबी को ठीक तरह पच जाने देने के लिए एक वक्त का उपवास जरूरी है। नियत समय और खरी भूख इन दोनों के मिलने का समय ही भोजन करने का ठीक समय है।

सबेरे प्रातःकाल ही भर पेट भोजन नहीं लेना चाहिए। रात को सो जाने के कारण भोजन पचने में कुछ कसर रह जाती है, उसे पूरा कर देने के लिए पेट को कुछ समय मिलना चाहिए। यदि सबेरे ही भोजन कर लिया जाये, तो एक काम पूरा न होने पर भी दूसरे काम में लगा देने वाले नौकर का जैसा काम होता है वैसा ही पेट का होता है। सबेरे यदि भूख मालूम पड़े और बिना कुछ खाये परिश्रम करने में कठिनाई मालूम पड़े, तो दूध, छाछ, फलों का रस, नीबू एवं शहद मिला पानी या ऐसी ही कोई पतली चीज ली जा सकती। तीसरे पहर या किसी अन्य वक्त कुछ ऐसी ही जरूरत पड़े, तो उपरोक्त प्रकार की पतली-पतली तुरंत पचने वाली चीजें ले लेनी चाहिए।

कैसे खाया जाये ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि शांत चित्त, प्रसन्न मन और पवित्रता के साथ खाना चाहिए। जिस समय शोक, क्रोध, उत्तेजना, क्लेश, विरोध उत्पन्न होते हों, उस समय भोजन

करना या कराना ठीक नहीं। मनोविकारों के आवेश के समय पाचक रस स्रवित करने वाली ग्रंथियाँ सूख जाती हैं और उनमें से वे रस बहुत कम निकलते हैं, जो पचाने के लिए आवश्यक हैं। जो रस निकलते हैं, वे क्रोध आदि के कारण विषैले हो जाते हैं, उनके द्वारा न तो ठीक पाचन होता है और न शुद्ध रक्त बनता है। आवेश के समय भूख नहीं रहती। इससे भी स्पष्ट है, शरीर उस समय भोजन ग्रहण करने की स्थिति में नहीं होता। शांत चित्त और प्रसन्न मन से खूब चबा-चबाकर ग्रास को पेट में जाने देना चाहिए, यहाँ जल्दबाजी अच्छी नहीं। दाँतों का काम भोजन को पीसना और आँतों का काम भोजन को पचाना है। अगर दाँत ठीक तरह न पीसें और अधकुचले ग्रास यों ही निगल लिए जाएँ, तो दाँतों का काम आँतों को करना पड़ता है। पीसने का और पचाने की दोनों क्रियाएँ करने में पेट को बड़ी मेहनत पड़ती है और वह बेचारा थककर अपना काम ठीक तरह नहीं कर पाता। मुँह में छोटी-छोटी गिल्टियाँ होती हैं, ग्रास को मुँह में चबाते समय उन गिल्टियों में से एक रस निकलता है, जिसके द्वारा पाचन क्रिया में बड़ी सहायता मिलती है। यदि यह रस भोजन में न मिले, तो पाचन कार्य बड़ा जटिल हो जाता है। इस दृष्टि से भी चबाना आवश्यक है। आयुर्वेद का मत है कि हर ग्रास को बत्तीस बार चबाकर तब निगलना चाहिए। ऐसी संख्या नियत करना और हर ग्रास में गिनती करना तो कठिन है, पर इतना ध्यान तो अवश्य रखना चाहिए कि ग्रास खूब अच्छी तरह पिस जाय, पतला हो जाय और निगलते समय जरा-सी अड़चन न मालूम पड़े। दलिया, हलुआ, खीर आदि पतली चीजों को भी इसी प्रकार चबाना चाहिए यों ही पी जाना ठीक नहीं। पानी या दूध भी एकदम न चढ़ा लेना चाहिए वरन् घूँट-घूँट, थोड़ा-थोड़ा मुँह में जरा रोककर पीना चाहिए।

अन्न में अमृत की भावना करके, भगवान् के प्रसाद की भावना करके उसे प्रसन्नता और आदर के साथ खाना चाहिए। स्वाद में थोड़ी कमी होने के कारण नाक, भौं सिकोड़ना, उसमें दोष ढूँढ़ना, असंतुष्ट होकर खाना, खराब समझकर खाना बहुत बुरा है।

दुर्भाव, द्वेष दोषारोपण और अपमान के साथ खाया हुआ अन्न पेट में विकार उत्पन्न करता है। लाभ के स्थान पर हानिकारक सिद्ध होता है। यदि सूखे-सूखे साग, सत्तू को सिर माथे चढ़ाकर, अन्न देवता के अमृतोपम गुणों का चिंतन करते हुए संतोष और प्रसन्नता के साथ खाया जाये, तो उसके द्वारा निश्चय ही पाचन अवश्य होगा और शुद्ध रस रक्त बनेगा।

कितना खाया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यह कि भूख से कम खाया जाय। हर एक शरीर की आवश्यकता और पाचन-शक्ति की मर्यादा भिन्न-भिन्न है। सबके लिए एक परिणाम निश्चित नहीं किया जा सकता। इसका निश्चय तो खाने वाले का पेट ही कर सकता है। पेट बता देता है कि शरीर की आवश्यकता और पचाने की शक्ति कितनी है ? जितना वह माँगे उतना ही देना चाहिए। पेट को आधा भोजन से भरना चाहिए, चौथाई जल के लिए और चौथाई हवा के लिए खाली रहने देना चाहिए, ऐसा शास्त्रकारों का मत है। आधे चौथाई का नाप-तोल तो कठिन है, पर इतना ध्यान रखना चाहिए कि भूख से कम खाया जाय, पेट में कुछ जगह रहने दी जाय। इतना आहार न लेना चाहिए कि खाने के बाद चलना-फिरना या काम करना कठिन मालूम हो। भोजन के बाद स्फूर्ति आनी चाहिए। काम करने को अधिक तबियत करनी चाहिए। पर यदि आलस्य आये, भारीपन मालूम पड़े तो उसे भोजन की अधिक मात्रा का कारण समझना चाहिए। कुछ कम भोजन किया जाये, तो कुछ हर्ज नहीं, बल्कि लाभ है, क्योंकि पेट आसानी से उस काम को पूरा कर लेता है, पूरा रक्त बन जाता है। यदि अधिक भोजन हो, तो उस भार को टालने में पेट को भारी मेहनत पड़ती है। इतना पचाने के लिए पर्याप्त पित्त नहीं होता इसलिए कच्ची हालत में ही मल होकर निकल जाता है। भोजन की मात्रा में यह बात याद रखने की है कि भूख से पेट की माँग से कुछ कम ही खाना चाहिए, अधिक कदापि नहीं।

रात्रि का भोजन सोने से कम से कम दो-तीन घंटे पूर्व हो जाना चाहिए। खाने के बाद तुरंत सो जाने से अन्न पेट में बिना

पचा पड़ा रहता है, इससे नींद में बाधा पड़ती है और ठीक समय पर पचने से जो लाभ मिलना चाहिए वह नहीं मिलता।

क्या खाया जाय, कब खाया जाय, कैसे खाया जाय, कितना खाया जाय, इन चार बातों पर समुचित ध्यान देने और नियमानुसार आचरण करने से पेट की संपूर्ण शिकायतें दूर हो जाती हैं, कब्ज नहीं रहता, पाचन अंग ठीक हो जाते हैं, फलस्वरूप पेट में फैली हुई निर्बलता और अस्वस्थता की जड़ें कट जाती हैं एवं जीवन में एक भारी संकट से छुटकारा मिल जाता है।

(३) उचित परिश्रम—मशीन को यदि बेकाम पड़ा रहने दिया जाये; तो उसके पुर्जों को जंग लग जाती है, मैल जमा हो जाता है और यदि उसे बहुत अधिक चलाया जाये, तो पुर्जे आदि घिसकर वह बहुत जल्द बेकार हो जाती है। यही बात शरीर की है। आलस्य में पड़े रहना, अमीरी की शान में मेहनत से जी चुराना, शरीर की क्रियाशीलता को नष्ट करना है। मांस, नस, नाड़ी, त्वचा आदि की कार्यशक्ति कायम रखने के लिए इनको परिश्रम का काम अवश्य देना चाहिए। स्वस्थता के लिए शारीरिक परिश्रम करना अत्यंत आवश्यक है, किंतु साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि वह परिश्रम इतना अधिक न हो कि शरीर की जीवनी शक्ति का खजाना खाली हो जाय। सामर्थ्य से अधिक काम करने से शरीर में उष्णता बढ़ती है और उस गर्मी से जीवन तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, ऐसे आदमी अधिक नहीं जीते। आमदनी से जिसका खर्च अधिक होगा, उसे दिवालिया बनना पड़ेगा। मेहनत करना, हर अंग को काम देना, डट कर उत्साहपूर्वक काम करना, परंतु शक्ति की मर्यादा के अंदर काम करना यही उचित परिश्रम है और यही लाभदायक है।

बहुत से लोग दिमागी परिश्रम से पैसा कमाते हैं, ऐसे लोग सोचते हैं कि शरीर को क्यों कष्ट दिया जाय, जो काम शरीर द्वारा किये जाते हैं, उनको तो नौकर द्वारा भी पूरा करा सकते हैं, यह उनकी भूल है। रोटी पचाने का काम नौकर का पेट नहीं कर सकता, जब प्यास, भूख मल-मूत्र त्यागने की इच्छा हो, तो इन

कार्यों को भी नौकर द्वारा नहीं कराया जा सकता। शरीर के अंग-प्रत्यंगों को उचित परिश्रम देकर, उन्हें क्रियाशील बनाये रहना, यह कार्य भी खुद ही करना पड़ेगा, यह नौकर से नहीं हो सकता।

संसार के बड़े लोग जिनके पास बहुत अधिक कार्य भार रहता है, स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ न कुछ काम अवश्य करते हैं। बगीचे में पौधों के लिए मिट्टी खोदना, छोटा-मोटा बढ़ईगीरी का काम, कपड़े धोना, घर की सफाई या ऐसे ही किन्हीं अन्य कामों को दैनिक जीवन में स्थान अवश्य मिलना चाहिए। टेनिस, फुटबाल, क्रिकेट, कबड्डी या ऐसे ही कोई खेल तलाश किये जा सकते हैं। वायु सेवन के लिए नित्य कई मील टहलना जरूरी है। दंड-बैठक, डंबल, मुग्दर, आसन, प्राणायाम आदि भी अच्छे हैं। शरीर के हर एक अंग को इतना परिश्रम मिलना चाहिए कि वह अनुभव करे कि मुझसे पूरा काम लिया है। इसके बिना अंग जकड़ने लगते हैं, चर्बी बढ़ने लगती है, कब्ज, बवासीर आदि रोगों का आक्रमण होने लगता है। दिमागी काम करने वालों या अमीरों को भी शारीरिक काम की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि अशिक्षित और गरीबों को। उचित परिश्रम मनुष्य मात्र के लिए आवश्यक है।

(४) अव्यवस्था से बचाव—भोजन और काम की तरह स्वास्थ्य को ठीक रखने में व्यवस्था और संयमशीलता का स्थान है। दैनिक कार्यक्रम नियमित होना चाहिए। सोने का, भोजन का, काम करने का, स्नान का, नित्यकर्म का व्यायाम का समय निर्धारित होना चाहिए। विवाहित पुरुषों को इस सेवन में मर्यादित होना चाहिए। गर्भाधान क्रिया-संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से, ऋतु धर्म के पश्चात् ३-४ दिन तक की जानी चाहिए। महीने में चार-छह बार से अधिक वीर्यपात के अवसर न आने देना चाहिए। यह एक बड़ा झूठा और गलत भ्रम लोगों में फैला हुआ है कि स्त्री को संतुष्ट रखने के लिए अधिक काम सेवन आवश्यक है। अधिकांश स्त्रियाँ कामी पुरुषों की इच्छा नहीं करतीं, उन्हें तो पुरुषार्थी, सदाचारी, प्रसन्न मुख, सच्चा प्रेम करने वाला, जीवन संगी की आवश्यकता होती है। हम ऐसे अनेकों उदाहरण जानते हैं, जिनके पति काम

सेवन में अयोग्य है, उसके बावजूद गृहस्थ जीवन सब भाँति सुखों से भरा हुआ है। अधिक काम सेवन से रतिक्रिया का आकर्षण और आनंद चला जाता है। पुरुष और स्त्री दोनों को ही रज-वीर्य के रोग आ घेरते हैं, इसलिए काम सेवन संबंधी व्यवस्था बनाना और उस पर दृढ़तापूर्वक कायम रहना जरूरी है। इसमें अमर्यादित रहने से स्वास्थ्य की बुरी तरह बर्बादी होती है।

दिन भर के सब कार्यों का ठीक कार्यक्रम होना चाहिए। नियमित और संयमित जीवन बीमारियों के चंगुल में नहीं जाने देता। इसके अतिरिक्त सादगी और स्वाभाविकता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। कपड़ों की भरमार कुछ जरूरी नहीं। कुर्ता, धोती और चप्पल—इतने परिधान से काम चल सकता है। अधिक सर्दी या अधिक गर्मी से बचाव करने के लिए आवश्यकता के समय कुछ प्रबंध किया जा सकता है। अधिक कपड़े पहनने से सूर्य की किरणें और वायु शरीर के सब अंगों तक नहीं पहुँच पातीं। जिसका फल वही होता है, जो प्रकाश और हवा से बचाकर रखे जाने वाले पौधों का होता है। ऋतुओं के प्रभाव से सदा अपने को बचाते ही न रहना चाहिए। सर्दी, गर्मी और बरसात का प्रभाव शरीर में मजबूती और चैतन्यता पैदा करता है, रोग एवं विपरीत परिस्थितियों का सामना कर सकने योग्य शक्ति उत्पन्न करता है, जो लोग गर्मी के दिनों में खस की टट्टियों में, बिजली के पंखों के नीचे बैठे रहते हैं, सर्दी में ऊनी और रुई में कपड़ों से लदे हुए अँगीठी तापते रहते हैं। वर्षा में एक बूँद शरीर पर नहीं पड़ने देते उनकी शक्ति बड़ी निर्बल हो जाती है। जरा-सी बात में उन्हें सर्दी, जुकाम, लू लगना, सिर दर्द, खाँसी आदि का शिकार होना पड़ता है। बीमारियाँ आसानी से उन्हें घेर लेती हैं। इसलिये ऋतु प्रभाव की अधिक प्रचंडता से बचाव करते हुए, साधारणतः उनका थोड़ा बहुत प्रभाव सहना चाहिए।

सफाई, स्वच्छता, पवित्रता का स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है। पसीना भी मूत्र के समान ही गंदा और दूषित पदार्थ है। शरीर पर पहने जाने वाले कपड़ों में पसीना नित्य लगता है, इसलिये उन्हें नित्य धोना चाहिए। नित्य धूप में सुखाना चाहिए। ऐसे

घर में रहना चाहिए, जिसमें सीलन न हो प्रकाश और हवा भली प्रकार पहुँचती हो। शरीर, वस्त्र और घर यह तीनों ही सदा स्वच्छ, निर्मल, सुशोभित एवं साफ-सुथरे रहने चाहिए। भोजन और जल की तथा उनके रखने के स्थान और छतों की सफाई जरूरी है। सस्ती चीजें काम में लाई जा सकती हैं, पर वे साफ और स्वच्छ होनी चाहिए। बढ़िया और कीमती चीजें यदि मैली और गंदी हैं, तो उनसे कुछ लाभ नहीं।

सदा हँसमुख रहने और प्रसन्नता अनुभव करने की आदत डालनी चाहिए, सामने चाहे कितने ही बड़े कार्यक्रम क्यों न हों, कैसे भी भारी कठिनाइयाँ आगे हों, कैसी ही विपत्ति आई हों, मन के ऊपर उसका अत्यधिक भार न पड़ने देना चाहिए। शोक, चिंता, क्षोभ, घबराहट, बेचैनी, उद्विग्नता, व्याकुलता, किंकर्तव्यविमूढ़ता, वह सब स्वास्थ्य के सर्वोपरि शत्रु हैं। चार दिन आहार न मिलने से शरीर की जितनी क्षति होती है, उससे अधिक एक दिन की चिंता, शोकातुरता तथा व्याकुलता से होती है। इन मानसिक विक्षोभों से कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं। विपरीत परिस्थितियों में भी मानसिक संतुलन को कायम रखना, विपत्ति से छुटकारा पाने का सर्वोत्तम उपाय है।

एक घंटे नित्य हँसना, एक गिलास दूध या एक छटांक घी से अधिक बलवर्धक है। खुश रहने वाला, मुस्कराता रहने वाला, प्रसन्न चित्त, हँसकर बोलने वाला, चेहरे पर उल्लास और आशा की किरणें धारण किये रहने वाला मनुष्य सदा स्वस्थ रहता है। एक शरीर शास्त्री कहता है कि—"प्रसन्नता और स्वस्थता का आपस में बड़ा घना संबंध है, पर मैं यह नहीं जानता कि लोग स्वास्थ्य के कारण प्रसन्न रहते हैं या प्रसन्नता के कारण स्वस्थ रहते हैं।" निस्संदेह प्रसन्नता का स्वास्थ्य के ऊपर बड़ा ही अच्छा असर पड़ता है। फ्रांस की एक कहावत है कि "हँसो और मोटे बनो"। जो हँसता है उसकी तंदुरुस्ती सदा कायम रहती है। इसके विपरीत कुढ़ने वाले, ईर्ष्यालु, डाह करने वाले मन ही मन नाराज रहने वाले, अपने दुर्भाग्य और दुःख का रोना रोने वाले, दूसरों पर दोषारोपण करने

वाले, संकुचित मनोवृत्ति के लोग अपने इस संकीर्ण और दूषित मनोभावों के कारण खून को जलाते रहते हैं, उनका खाया-पिया अंग नहीं लगता। मनोविकारों की अग्नि में उनकी जीवन शक्ति शनैः-शनैः भुनती रहती है और वे कमजोरी, बीमारी एवं अकाल मृत्यु की भट्टी में गिर पड़ते हैं। कपट, छल, झूठ, ढोंग, चोरी, दुराचार, अहंकार आदि दोषों से भी तंदुरुस्ती में भारी नुकसान पहुँचता है।

मन को सदा प्रसन्न, चिंता रहित, निर्दोष, निर्विकार रखना चाहिए। सदा सुंदर भविष्य की आशा करनी चाहिए। लोगों को सद्भावना, आत्मीयता, प्रियता और उदारता की दृष्टि से देखना चाहिए, ईश्वर पर विश्वास रखना चाहिए, निश्चिंत रहना चाहिए। परमात्मा की गोद में हमारा जीवन सुरक्षित है, ऐसा विश्वास रखने से बहुत-से भय और संदेहों से छुटकारा मिल जाता है।

स्मरण रखिये, स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए चार बातों की आवश्यकता है—(१) खाद्य-पदार्थों का चुनाव, (२) खाने का तरीका, (३) उचित परिश्रम, (४) अव्यवस्था से बचाव। इन चारों बातों पर ध्यान रखना और उन पर आचरण करना कुछ विशेष कठिन नहीं है। मन को जरा सावधान करके थोड़े दिन तक इन पर प्रयत्नपूर्वक ध्यान रखा जाये, तो फिर वैसी ही आदत पड़ जाती है और यह बातें स्वभाव में शामिल हो जाती हैं। इन चारों बातों की आदत रूप में परिणत हो जाना, मानो स्वास्थ्य के ऊपर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेना है।

कायाकल्प के इच्छुकों ! यह चारों बातें औषधि नहीं है, पर इनका उपयोग हजारों रुपयों की रंगबिरंगी बोतलों से अधिक कीमती है। इन नियमों का आचरण करो। आपका स्वास्थ्य ऐसा उत्तम बन जायेगा, जिसे आज के स्वास्थ्य के मुकाबले में निश्चय ही कायाकल्प कहा जा सकता है।

□□

कमजोरी और बीमारी का कारण

कमजोरी और बीमारी दोनों का आधार एक ही है। यंत्रों के ठीक तरह काम न करने से जीवनी शक्ति उचित मात्रा में उत्पन्न नहीं होती यही कमजोरी है। जब यह व्यवस्था अधिक उग्र रूप धारण कर लेती हैं, किसी विशेष अंग या समस्त शरीर में कोई उपद्रव खड़ा कर देती है, तो उसे बीमारी कहते हैं।

बीमारी का मूल कारण शारीरिक अवयवों की कार्यप्रणाली में दोष आ जाना है। यह कहा जाता है कि कीटाणुओं द्वारा रोग फैलते हैं। इससे यह भ्रम होता है कि बीमारियाँ बाहर से आती हैं। अगर कीटाणुओं से बचा रहा जाये, तो बीमारी न हो, परंतु यह खयाल सही नहीं है, बीमारी में जो कीटाणु देखे जाते हैं, वे भीतरी गड़बड़ी के कारण अंदर से ही उत्पन्न होते हैं। शरीर के अंदर इतना अम्ल, क्षार और ताप होता है कि बाहर से आये हुए कीटाणु उसमें आसानी से नष्ट हो जाते हैं, बाहर के कीटाणु को शरीर में ठहरने के लिए तभी स्थान मिलता है; जब अम्ल, क्षार, ताप एवं रक्त में दोष होता है। निर्दोष रक्त और बलवान् शरीर में भयंकर संक्रामक रोगों के कीटाणुओं की दाल नहीं गलती है। हैजा, प्लेग, चेचक आदि संक्रामक रोगों के जमाने में अनेक परोपकारी स्वयंसवेक उन रोगियों की सेवा करते और मुर्दे जलाते हैं, पर उन पर कुछ भी आक्रमण नहीं होता। चेचक निकले हुए बच्चे को मातायें छाती से लगाये बैठी रहती हैं। हैजा और प्लेग के रोगियों की सेवा उनके संबंधी लोग बहुत पास से करते हैं। तपेदिक के रोगी की भी पास रहकर तीमारदारी की जाती है, पर देखा जाता है कि परिचर्या करने वालों पर उस रोग का आमतौर से कोई असर नहीं होता। गंदगी को साफ करना ही जिनका एकमात्र पेशा है, वे मेहतर लोग, पग-पग पर रोग-कीटाणुओं से डरने वालों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वस्थ और बलवान् रहते हैं।

यह भी देखा जाता है कि बड़े घरानों में जहाँ सफाई और कीटाणुओं के बचाने का पूरा ध्यान रखा जाता है, वहाँ तपेदिक आदि अछूत के कहे जाने वाले रोग तथा अनेकानेक अन्य रोग होते रहते हैं, वहाँ जब पग-पग पर कीटाणुओं से बचाव की इतनी सावधानी रखी जाती है, तब फिर से कीटाणु कैसे पहुँच जाते हैं ? यदि कहा जाय कि हवा में दौड़ते रहते हैं और बे-रोक-टोक हर जगह पहुँच जाते हैं, तब यह सवाल पैदा होता है कि जब हवा में ही वे उड़ते-फिरते हैं, तो हवा सब लोगों तक पहुँचती है, इसलिए सब को रोगी होना चाहिए। वास्तविक बात यह है कि भीतरी खराबी से रोग और रोग-कीटाणु पैदा होते हैं। यदि रोग को बाहर से आया हुआ मानें, तो भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि निर्बल शरीर में ही रोग-कीट अपना अड्डा जमाने में समर्थ होते हैं। स्वस्थ और सतेज शरीर में यदि वे प्रवेश करेंगे, तो भीतर की जीवनी शक्ति क्षण भर में उन्हें नष्ट कर डालेगी और निकालकर बाहर कर देगी।

आमतौर से कमजोरी और बीमारी की जड़ पेट में होती हैं। जब अन्न ठीक तरह नहीं पचता, तो उससे रक्त भी नहीं बनता। बिना उचित मात्रा में शुद्ध रक्त बने वह शक्ति प्राप्त नहीं होती, जिससे आवश्यक परिश्रम किया जा सके। ऐसे लोगों को जरा-सी मेहनत में भारी थकान आ जाती है, रक्त की गर्मी और गति कम हो जाने के कारण अंगों में स्फूर्ति नहीं रहती। आलस्य और उदासी छाई रहती है, आवश्यक खून न पहुँचने के कारण हाथ, पैर और कमर में हड़फूटन तथा वेदना होती रहती है, यह कमजोरी है। यह कमजोरी बाहरी अंगों की भाँति भीतरी अंगों में भी होती है। वे भी अपना काम ठीक तरह नहीं कर पाते, फलस्वरूप बिना पचा अन्न मल द्वारा निकलता है। बिना शुद्ध हुआ जल मूत्र द्वारा निकल जाता है। लगातार चिकनाई सफेदी मिला पीले रंग का मूत्र उतरना मूत्राशय और गुर्दे की कमजोरी का चिह्न है। शीघ्रपतन वीर्य वाहिनी नाड़ियों और गुप्त स्थान के ज्ञान-तंतुओं की निर्बलता का चिह्न है। उसे ही लोग प्रमेह कहते हैं। खुश्की, गर्मी, जलन, अकड़न, दर्द,

निर्बलता यह सब वैसे ही लक्षण हैं, जैसे कि भूखे आदमी में पाये जाते हैं, जिसे अन्न जल न मिलता हो ऐसा आदमी भूख-प्यास के कारण बड़ी बेचैनी अनुभव करेगा, उसे कोई रोग न हो तो भी सौ रोगों का रोगी मालूम पड़ेगा। उसी प्रकार शरीर के भीतरी अवयव दिल, दिमाग, फेफड़े, गुर्दे, मूत्राशय, जिगर, आंत, आमाशय आदि प्रधान अंग तथा समस्त में फैले हुए ज्ञान-तंतु, नस, नाड़ी मांस पेशी, अस्थि, चेतना-केंद्र आदि जब अपना पोषक तत्त्व-नवीन रक्त प्राप्त नहीं कर पाते, तो उनकी वही दशा हो जाती है, जो भूखे-प्यासे आदमी की होती है। यह क्षुधाजनित पीड़ा, कमजोरी एक प्रकार की बीमारी ही है।

पाचन क्रिया ठीक न होने पर अन्न पेट में सड़ने लगता है। जैसे आटे में पानी डालकर हांडी में भरकर गरम जगह में रख दिया जाये, तो वह सड़ेगा, उसमें शीघ्र बदबू उठेगी, जहरीला माद्दा पैदा हो जायेगा और छोटे-छोटे कीड़े उत्पन्न होंगे। पेट में बिना पचे आहार का भी यही होता है। सड़कर वह विषैला हो जाता है, यह विष नस-नाड़ियों में रुधिर और मांस में मिल जाता है। जहाँ अवसर मिलता है, वहीं यह विष इकट्ठा हो जाता है और उस अंग में उपद्रव खड़े करता है। आँख, कान, नाक, सिर, घुटना, जोड़, हाथ, पैर जहाँ भी यह विष ठहर गया, वहीं वह उपद्रव करने लगता है। इन उपद्रवों को रोग कहा जाता है।

विषैले, दूषित, विजातीय, अनावश्यक पदार्थों को निकालकर बाहर करते रहना, यह शरीर का स्वाभाविक और दैनिक कार्य है। मल-मूत्र, पसीना, कान, नाक, आँख आदि का मैल छिद्रों द्वारा निरंतर अनावश्यक, हानिकारक, विषैले पदार्थ आसानी से निकाल बाहर किये जाते हैं, परंतु जब शरीर की जीवनी शक्ति निर्बल होती है तो यह सफाई का कार्य अच्छी तरह नहीं हो पाता। इससे रक्त मलीन, गंदला, भारी, दूषित और निर्बल हो जाता है। शुद्ध रक्त तो दूषित पदार्थों को झट बाहर फेंक देता है, पर अशुद्ध रक्त उस कार्य को अच्छी तरह नहीं कर पाता। साफ पानी में लकड़ी का टुकड़ा डुबोया जाये, तो पानी झट उसे ऊपर सतह पर फेंक देगा,

पर यदि गंदली कीचड़ में लकड़ी का टुकड़ा डुबोया जाये, तो वह ऊपर न फेंक सकेगा वरन् बीच में ही पड़ा रहेगा। यही बात शुद्ध और अशुद्ध रक्त द्वारा रोगों को निकाल बाहर करने की सामर्थ्य के बारे में है। कमजोर आदमी की देह में विषैले तत्त्व भरे रहते हैं और वे समय-समय पर विभिन्न रूप धारण करके उपद्रव खड़े करते हैं। एक उपद्रव दब गया तो वह विष दूसरी तरफ चला जाता है और किसी और अंग में जाकर कोई और नया रूप धारण करके नये रोग के नाम से प्रकट होता है। एक रोग अच्छा हुआ दूसरा शुरू हुआ, दूसरा अच्छा हुआ तीसरा शुरू हुआ यह क्रम बराबर चलता रहता है।

रक्त में एक प्रकार के श्वेत वर्ण के शुभ्र कीटाणु होते हैं, यह एक प्रकार के युद्ध सैनिक होते हैं। विजातीय, विषैले तत्त्वों से लड़ना और उन्हें परास्त करके शरीर से बाहर निकाल देना यही इनका प्रमुख कार्य होता है, जहाँ विष को इकट्ठा देखते हैं, वहाँ वे स्वस्थ कीटाणु अपना मोर्चा जमाते हैं, शरीर के अन्य भागों में से खिचकर युद्ध सैनिक इकट्ठे होते हैं और उस दूषित तत्त्व से लड़ाई ठानते हैं, उसे मार-पीटकर बाहर निकाल देने के लिए भारी संग्राम मचाते हैं। इस संग्राम से देह में गर्मी उत्पन्न होती है। प्रायः हर एक बीमार स्थान में गर्मी बढ़ी हुई होती है। यदि समस्त शरीर में यह संग्राम छिड़ा हुआ होगा तो सारी देह गरम हो जायेगी, उसे बुखार कहते हैं। फोड़ा, सूजन आदि के स्थान पर भी गर्मी पाई जायेगी, जुकाम में सिर गरम रहेगा, दुखती हुई आँखें अपेक्षाकृत अधिक उष्ण होंगी। फोड़ा, बलगम, कै, दस्त, कफ, पीब, पसीना आदि विभिन्न रूपों उन दूषित पदार्थों को बाहर निकाला जाता हुआ हम देखते हैं। जब यह चीजें निकल रही हैं, तो डरना या घबराना न चाहिए, वरन् धैर्यपूर्वक इन्हें निकल जाने देना चाहिए, जिससे सफाई का कार्य ठीक प्रकार से हो जाय। रोग उत्पन्न होते ही उसे यदि दबा दिया जाये, तो तात्कालिक कष्ट तो अच्छा हो जायेगा, पर वह विष शरीर में बना ही रहेगा और वह फिर कोई नया उपद्रव खड़ा करेगा।

दर्द या वेदना क्या है ? जीवनी शक्ति और विषैले तत्त्वों की लड़ाई का होना—यही वेदना है। इस लड़ाई में अगर रक्त के श्वेत कोष जीतें, तो बीमारी अच्छी हो जाती है, अगर विषैले तत्त्व जीतें और उन्होंने अपना प्रभाव बढ़ा लिया, तो शरीर के लिए घातक परिणाम उपस्थित होता है। फोड़ों का विषैला होकर हड्डी तक को गला देना, ज्वर का उग्र रूप धारण करके प्राण ले लेना, कै, दस्त की उग्रता में शरीर नष्ट हो जाना यह विष की विजय है। विष को परास्त करके और स्वस्थ जीवन-कोषों की सहायता देना चिकित्सा का यही उद्देश्य है। चिकित्सक का यही कर्तव्य होना चाहिए कि रोग को दबायें नहीं, वरन् निकालकर बाहर कर देने में स्वस्थ कोष की सहायता करें, किंतु वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों का दृष्टिकोण दूसरा ही है। रोगों को दबाकर अपनी औषधि का चमत्कार प्रकट करना यही उनका लक्ष्य रहता है। इससे रोगी को तत्काल तो कुछ लाभ मालूम पड़ता है, पर उसका कष्ट दूर नहीं होता। कुनैन खाने से बुखार अच्छा हो जाता है, पर यह अच्छा होना न होने के बराबर है। अत्यंत गरम, उष्ण और रूक्ष दवाओं से संहार का काम होता है, रोग-कीटाणु एवं स्वस्थ-कीटाणु सभी उससे मरते हैं, पीछे की गर्मी से महीनों शरीर जलता रहता है। यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे अपनी और दुश्मन की सेनाएँ लड़ रही हों, तो गैस छोड़कर दोनों सेनाओं को मार डाला जाय और लड़ाई समाप्त हो जाने की खुशी मनाई जाय। लड़ाई समाप्त जरूर हुई, पर अपनी फौज भी तो मर गई। प्रशंसा की बात वह थी कि दुश्मन की फौज मरती, पर अपनी फौज की हानि न होती।

रोगों को दबाने की अपेक्षा यह अच्छा है कि उनके विष को भीतर से निकल जाने दिया जाये। चिकित्सा आवश्यक है—पर वह ऐसी होनी चाहिए, जो बीमारी को देर में और धीरे-धीरे भले ही अच्छा करे, पर विष को निकाल दे और स्वस्थ जीवन कोषों की रक्षा करे।

स्मरण रखिये, रोग और निर्बलता एक ही बात है। पाचन अंगों का सुधार सब रोगों की मूलभूत चिकित्सा है। इस चिकित्सा

विधि से कमजोरी और बीमारी दोनों का नाश होता है और कायाकल्प के समान उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है। पाचन क्रिया को सुरक्षित रखने के उपाय पहले बताये जा चुके हैं। रुग्ण, शिथिल, शक्तिहीन, विषाक्त और विकृत अवस्था में पड़े हुए पाचन अंगों को पुनः सजीव करने की विधि आगे बतायेंगे।

□ □

कलपुर्जों की सफाई

पुराने विकारों का संशोधन करने के लिए यह आवश्यक है कि एक बार भीतर की भली प्रकार सफाई कर डाली जाय। मशीन बहुत दिन चलती रहती है, तो उसके पुर्जों में धूल जम जाती है, जिससे मशीन के चलने में रुकावट पड़ती है, भारीपन आ जाता है। तब बुद्धिमान् मिस्त्री उसकी सफाई करते हैं, जमे हुए मैल को निकालते हैं। साफ हो जाने पर मशीन हल्की चलने लगती है, ठीक काम करने लगती है। उसी प्रकार शरीर की सफाई भी आवश्यक है। बाहरी सफाई तो नहा-धोकर कर ली जाती है, पर भीतरी सफाई की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। वास्तव में भीतर की सफाई भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि बाहर की।

जिन्होंने अब तक भीतरी सफाई पर ध्यान नहीं दिया है, उन्हें बिना थोड़ा भी विलंब लगाये, उस कार्य को कर डालना चाहिए। बीमारों और कमजोरों को तो सबसे पहले यही करना चाहिए। अगर नाली कीचड़ से रुककर सड़ रही हो और भारी दुर्गंध फैला रही हो, तो ऊपर से इन पर गुलाबजल छिड़कने से काम न चलेगा, इस नाली में जमे हुए मैल को एकबार निकाल कर साफ करना होगा। सफाई हो जाने के बाद वह दुर्गंध अपने आप मिट जायेगी, बीमार और कमजोरों को अपनी स्थिति को उत्तम बनाने के लिए, कायाकल्प करने के लिए अंदर मुद्दतों के भरे हुए मैल को एक बार

अच्छी तरह साफ कर डालने की आवश्यकता है। इस सफाई के साथ-साथ अनेक व्यथाओं से स्वयमेव छुटकारा मिल जाता है।

भीतर जमे हुए मैल को साफ करने के लिए जुलाब लेने या दस्तावर औषधियाँ खाने का तरीका अधूरा और हानिकारक है। कारण यह है कि सड़ा हुआ मल, गाँठें, सुद्दे, कृमि, विकृत वायु इस प्रकार के नाना विधि विकार बड़ी आँत में, आँतों के अंतिम भाग में जमा रहते हैं। दस्तावर औषधि जब पेट में पहुँचती है, तो उसकी तीक्ष्णता से आमाशय में से रसों का स्राव होता है, इन स्रावित हुए जल के प्रवाह से आमाशय में जमा हुआ बिना पचा अन्न नीचे की ओर चलता है। औषधि की अधिकांश शक्ति तो आमाशय में खर्च हो जाती है, जो थोड़ी बहुत बचती है, उससे छोटी आँतों का पानी निचुड़ता है और इस प्रकार कच्चा मल पतला होकर दस्त के रूप में निकल जाता है। दस्तावर दवा का असर छोटी आँतों की लंबी यात्रा में खत्म हो जाता है। बड़ी आँत में चिपके हुए विकार ज्यों के त्यों रहते हैं। पुराने दोष जो बड़ी आँतों में थे, वे जहाँ के तहाँ रहे, केवल आमाशय और छोटी आँतों का कच्चा मल निकल गया। ऐसे दस्तों से सफाई का वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं होता, दूसरे दवा की गर्मी की जलन तथा आमाशय और आँतों का कीमती रस दस्त बहाने के तुच्छ काम में खर्च हो जाने से पेट की कमजोरी होती है। यह दोनों ही बातें स्वास्थ्य के लिए अनिष्टकर हैं। इस प्रणाली में लाभ के स्थान पर हानि अधिक है। नाली साफ करने के लिए दूध और घी की बाल्टियाँ भर-भर कर फेंकना जैसा मूर्खतापूर्ण है, वैसा ही मूर्खता पूर्ण आमाशय और छोटी आँतों का कच्चा मल बहाने के लिए पेट के बहुमूल्य रसों का निचोड़ना है। दस्तावर दवाएँ स्वयं अत्यंत उष्ण और विषैली होती हैं, वे पच जायें तो खून खराबी, कोढ़, भयंकर व्रण आदि उत्पन्न कर देती हैं। कभी पचे तो भी जुलाब के बाद बहुत दिन तक बड़ी गर्मी और बेचैनी भी रहती है और उस उष्णता की जलन में कई छोटे-छोटे रोग उठ खड़े होते हैं।

आँतों को साफ करने के लिए एनीमा का उपयोग सबसे अच्छा है। एनीमा यंत्र बाजार में बिकता है। चीनी के एक डिब्बे में रबड़ की ३ फुट लंबी नली लगी होती है, जिससे पानी खोला और बंद किया जाता है। साधारणतः एक सेर-डेढ़ सेर पानी इस एनीमा यंत्र द्वारा पेट में चढ़ाया जाता है। पानी थोड़ा गुनगुना होना चाहिए। इस पानी में कोई-कोई स्नान करने का थोड़ा-सा साबुन घोल देते हैं, पर हमारी समझ से एक नींबू का रस छानकर उस पानी में मिला देना अधिक अच्छा है।

जमीन पर चटाई बिछाकर दाहिने करवट लेट जाइये। धूप में किसी कुर्सी पर पानी से भरा एनीमा का डिब्बा रख लीजिये। टोंटी पर जरा-सा तेल लगाकर गुदा मार्ग में एक इंच प्रवेश कीजिए और टोंटी का नल खोलकर पानी भीतर जाने दीजिये। पानी धीरे-धीरे पेट में चढ़ेगा। हाथ से पेट को धीरे-धीरे मसलते जाइये, जिससे आँतों का मैल छूटने में सहायता मिले। पेट में पानी जाने पर कभी-कभी कुछ दर्द-सा मालूम होता है, कभी टट्टी जाने की इच्छा होती है। अगर यह बातें मामूली दर्जे की हों, तो कोई बात नहीं अधिक जोर से हो रही हो, तो टोंटी बंद करके पानी चढ़ना रोक देना चाहिए। जब पानी बंद हो जायेगा तो दर्द या मल त्याग की इच्छा भी बंद हो जायेगी। फिर थोड़ी देर बाद टोंटी खोलकर पानी चलना आरंभ कर दीजिये। दर्द या मल त्याग की इच्छा के कारण यदि कई बार पानी बंद करना और खोलना पड़े, तो वैसा करना चाहिए। पूरा पानी पेट में जाने से पहले यदि अत्यंत तीव्र वेग से मल त्याग की इच्छा हो, तो बीच में ही उठकर मल त्याग करना चाहिए और कुछ देर बाद फिर पूरे जल से एनीमा लेना चाहिए। पेट में पूरा पानी चले जाने पर १५-२० मिनट तक ऐसे ही पड़ा रहना चाहिए, पेट को थोड़ा-थोड़ा फुलाते सिकोड़ते रहना चाहिए, फिर उठकर मल त्याग करना चाहिए। मल त्याग की व्यवस्था पास में ही होनी चाहिए, क्योंकि आँतों में इतना पानी और धुला मल जमा होने के कारण मल त्याग की इच्छा बड़ी तीव्र होती है और उस समय अधिक दूर जाना कई प्रकार से असुविधाजनक होता है।

लेटने का एक दूसरा तरीका भी है। जमीन पर चटाई बिछा कर उल्टे लेटना चाहिए, पेट जमीन की तरफ और पीठ आकाश की ओर रहे। घुटने सिकोड़कर पेट छाती की तरफ कर लिए जाएँ, इसे ऊँट की तरह लेटना कह सकते हैं। जरूरत मालूम पड़े तो ठोड़ी और छाती के नीचे पतला-सा तकिया आराम के लिए लगाया जा सकता है। इस तरह उकडू लेटने से अधोभाग कुछ ऊपर को उठ जायगा और पेट कुछ नीचे को आ जायेगा। इस स्थिति में पानी चढ़ाने से यह लाभ बतलाया जाता है कि पेट कुछ ढीला होने के कारण पानी अधिक दूर तक आसानी के साथ आँतों में चला जाता है। करवट से लेटने में एक तरफ पानी का भार अधिक रहता है, लेकिन इस तरकीब से पेट के दोनों भागों पर पानी का दबाव समान रहता है।

दोनों ही तरीके अच्छे हैं। दोनों ही प्रचलित हैं, जिसको जिसमें सुविधा पड़े उस तरीके को काम में ला सकता है। एनीमा लेने के लिए सबेरे और शाम का समय अधिक उपयुक्त है। दैनिक, नियमित शौच क्रिया करने के बाद एनीमा लेना चाहिए। साधारण सफाई के लिए एक दिन में सुबह-शाम दो बार पानी चढ़ाना काफी है।

एनीमा कोई नई क्रिया नहीं है। हमारे पूर्वज भारतीय ऋषि-मुनि 'बस्ति-क्रिया' का भीतरी शुद्धि के लिए बहुत प्राचीन काल से प्रयोग करते आये हैं। वे जल को गुदा द्वारा खींचकर ऊपर चढ़ाते थे और कुछ देर उस पानी को पेट में रखकर बाहर निकाल देते थे। आँतें धोने का यह तरीका बहुत ही लाभदायक होने के साथ-साथ दोष रहित भी है। योगी लोग अभ्यास से गुदा द्वारा पानी चढ़ाने की क्रिया में सफल हो जाते हैं, पर यह सबके लिए संभव नहीं है। उस कठिन काम को एनीमा ने आसान कर दिया है। एनीमा लगाने में कोई कठिनाई या खतरा नहीं है, हर एक मामूली समझ का आदमी इसे लगा सकता है। हर ऋतु में, स्वस्थ या अस्वस्थ दशा में इसका प्रयोग हो सकता है। हाँ, छोटे बालकों के लिए विशेष सावधानी की जरूरत है। उनकी आँतें साफ करने के

लिए, इसी काम के लिए बनी हुई छोटी पिचकारी से ग्लेसरीन पहुँचाई जाती है। गुनगुना गौ घृत ग्लेसरीन का काम दे सकता है। पानी की पिचकारी देनी हो, तो बालक की आयु के अनुकूल ही पानी की मात्रा लेनी चाहिए।

एक दिन के एनीमा से सफाई का काम पूरा नहीं हो जाता। इस कार्य को एक सप्ताह जारी रखना ही चाहिए। बीमारी को दूर करने के लिए तो एक-डेढ़ महीना तक नित्य पानी चढ़ाने की आवश्यकता पड़ती है। पेट में जमा हुआ, आँतों से चिपका हुआ, सूखा, सड़ा, मल, मल की गाँठें, सुद्दे धीरे-धीरे निकलते हैं। नीबू का पानी उन्हें फुलाता है, छुड़ाता है, खुरचता है, कुरेदता है; तब कहीं उनका निकलना आरंभ होता है। देखा गया है कि एनीमा आरंभ करने के दो-तीन दिन बाद बड़ा बदबूदार, काला, सूखा हुआ मल थोड़ा-थोड़ा करके निकलता है, पेट की सफाई के लिए कम से कम एक सप्ताह तो चाहिए ही। जब तक खराब, पुराना, सड़ा हुआ मल निकलता रहे, तब तक सफाई का काम जारी रखना चाहिए, भले ही इस काम में कुछ समय अधिक लग जाय।

जब सफाई का काम आरंभ किया जाये, तो पेट को आराम देने का क्रम भी साथ-साथ रखना जरूरी है। पेट को एनीमा के द्वारा जब जलन, दाह, विषाक्त उत्तेजना से कुछ छुटकारा मिलता है, तो वह पुरानी थकान को मिटाने के लिए कुछ आराम चाहता है। इसीलिए सफाई के दिनों में भूख भी कम हो जाती है। बस्ति-क्रिया के साथ-साथ उपवास भी चलना चाहिए। आरंभ में दो-तीन दिन तो निरंतर ही रहना चाहिए। इन दिनों में पानी खूब पीना चाहिए, पानी में नीबू, संतरे का रस या थोड़ा शहद मिलाया जा सकता है। साधारण टहलना, स्नान, मालिश आदि मामूली हलचलें तो जारी रखनी चाहिए, पर अधिक समय शरीर और मन को आराम देने में लगाना चाहिए, जिससे शरीर की शक्ति अन्य कामों में खर्च न होकर मुद्दतों से जमे हुये, मलों को निकालने में और अस्त-व्यस्त अंगों को व्यवस्थित करने में लग जाये।

उपवास और एनीमा साथ-साथ चलने से पेट को बड़ी राहत मिलती है। स्कूल की छुट्टी के दिन बच्चों को जो प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता इन दिनों पाचन अंग अनुभव करते हैं, परंतु इस अवसर को वे ठलुआ पंथी में नहीं गुजारते, वरन् दूने उत्साह से सुधार और निर्माण के कार्य में जुट जाते हैं। देखा गया है कि इन कायाकल्प के दिनों में आँख, नाक, कान से मैल निकलते हैं। जीभ और दाँतों के ऊपर मैल जमता है, पसीना अधिक और बदबूदार आता है, पेशाब में भी पीलापन बढ़ जाता है, स्वाद में वह कड़ुआ हो जाता है। जितने भी मल निकलने के मार्ग हैं, उन सबसे काफी तादाद में मैल निकलता है। इसलिये इन दिनों त्वचा-इंद्रियों को भले प्रकार जल्दी-जल्दी साफ करते रहने की आवश्यकता पड़ती है।

उपवास करने वाले को दूसरे व तीसरे दिन भूख का कुछ अधिक कष्ट मालूम होता है, किसी-किसी को उबकाई-सी आती है। इससे हानि कुछ नहीं, थोड़ी हिम्मत से काम लेना चाहिए। जो लोग कमजोर तबियत के या शारीरिक दृष्टि से अधिक निर्बल हैं, उन्हें एक-दो दिन नीबू मिले पानी एवं फलों का रस लेना आरंभ कर देना चाहिए। संतरा, मौसमी, अंगूर, अनार जैसे फलों का रस आधपाव-आधपाव दिन में ४-५ बार लेते रहना चाहिए। टमाटर का रस या कच्चा दूध भी लिया जा सकता है। यह भी न हो सके तो उबली हुई तरकारियों का रस ले सकते हैं। जो तरकारियाँ कच्ची खाई जा सकती हैं, उन्हें कुचलकर रस निकाल लेना चाहिए, यह रस भी लिया जा सकता है। तरबूजे या नारियल का पानी भी काम दे जाता है। कुछ न हो तो मट्ठा से ही काम निकाल लेना चाहिए। अच्छे और बढ़िया फलों का रस अधिक हल्का, अधिक सुपाच्य एवं अधिक पोषक होता है, छोटे दर्जे के फल, शाकभाजी आदि में अच्छे फलों की अपेक्षा पोषक तत्त्व कम हैं और भारीपन अधिक हैं। फिर भी जिन लोगों को परिस्थितिवश बढ़िया फल न मिल सकते हों वे उपरोक्त अन्य घटिया दर्जे की चीजों से काम चला सकते हैं। नमक, चीनी या मिर्च मसालों को फलों के साथ मिलाकर उनका

महत्त्व कम न करना चाहिए। शाकों का रस अधिक अस्वादिष्ट लगे, तो जरा-सा नमक मिलाया जा सकता है। मिर्च-मसालों से तो सदा ही बचना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि उपरोक्त रसीले आहार भी अधिक मात्रा में और अधिक बार लिए जाएँ। थोड़ी मात्रा-अधिक देर में इन दो सिद्धांतों से अक्सर काम लेते हुए उपवास का क्रम चलाना चाहिए। पेट को अधिक से अधिक आराम देना यही उपवास का उद्देश्य है, यदि अधिक आहार पेट में पहुँचाया गया, तो उससे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती।

उपवास में डरने की कोई बात नहीं है। हम लोग समझते हैं कि भूखे रहने से शरीर दुर्बल और कमजोर हो जाता है। यह विचार ठीक नहीं। उपवास के बाद शरीर इतनी तेजी से उन्नति करता है कि भूखे रहने के दिनों में जितनी कमी पड़ी थी, उससे कहीं अधिक बढ़ोत्तरी हो जाती है। देखा गया है कि जिन रोगियों की बीमारी में लंघन हो जाते हैं, वे रोग मुक्त होकर जब उठते हैं तो बड़े जोर की भूख लगती है। ऐसी कड़ाके की भूख उन्हें बीमारी से पहले नहीं लगती थी। यह भी देखा गया है कि बीमारी के दिनों की क्षतिपूर्ति थोड़े ही समय में हो जाती है। कारण यह है कि बीमारी के दिन में जो लंघन-उपवास हुआ था, उससे आराम पाने से पेट के कलपुर्जों में एक नया जीवन आ जाता है, शरीर अपनी खोई हुई शक्ति से अधिक शक्ति प्राप्त कर लेता है। उपवास के दिनों में वजन जरूर घटता है, कमजोरी जरूर आती है, पर यह कमजोरी प्रत्येक दृष्टि से लाभदायक है, अंत में इसका परिणाम बहुत ही आशाजनक होता है।

एक बार एक फ्रेंच नाव किसी सुदूर देश की ओर जा रही थी। तूफान के कारण नाव किसी अनिश्चित दिशा में चली गई। भोजन-सामग्री थोड़ी थी। नाव में जितने यात्री थे उनके लिए वह छह दिन का पूरा खाना था, परंतु नाव को किनारे तक पहुँचने में एक महीना लग सकता था। नाव के कप्तान ने यात्रियों में वह भोजन बाँट दिया और कह दिया कि इसे थोड़ा-थोड़ा करके इस प्रकार खायें कि एक महीने तक जीवित रह सकें। यात्रियों ने ऐसा

ही किया, एक महीने बाद जब नाव किनारे पर पहुँची, तो यात्रियों को जो लाभ मालूम हुआ, वह आश्चर्यजनक था। उनमें से कितनों को ही रक्त विकार, श्वास, जलोदर, बहुमूत्र आदि रोग थे, वे सब लोग बिलकुल अच्छे हो गये। प्रायः सभी यात्री बिलकुल निरोग थे, यद्यपि देखने में वे कुछ कमजोर मालूम पड़ते थे। उपवास की ऐसी ही महिमा है। हिंदू धर्मशास्त्र में व्रतों के बड़े-बड़े माहात्म्य लिखे हैं, स्वास्थ्य की दृष्टि से उपवासों का जितना भी माहात्म्य गाया जाय—थोड़ा है। चंद्रायण व्रत में धीरे-धीरे १५ दिन में घटाकर बिलकुल निराहार तक पहुँचने और फिर धीरे-धीरे १५ दिन में क्रमशः बढ़ाकर पूरी खुराक तक पहुँचने का विधान है। यह व्रत सचमुच मनुष्य के स्वास्थ्य को चंद्रमा के समान शीतल, शांतिदायक और प्रकाशवान् बना देता है, इसी से उसका नाम चंद्रायण रखा गया है। उपवास का महत्त्व असाधारण है। यदि ठीक तरीके से किया जाये, तो स्वास्थ्य सुधार में उपवास बहुत ही सहायक सिद्ध होता है।

उपवास और एनीमा साथ-साथ चलने चाहिए। आरंभ में एक-दो दिन का निराहार उपवास के पश्चात् रसीले पदार्थों को स्वल्प मात्रा में लेते रहकर, फलहारी उपवास चलाना चाहिए। अधिक लंबे उपवास तो किसी अनुभवी आरोग्यशास्त्री की देखरेख में ही चलाये जाएँ, पर एक सप्ताह की सफाई-काया-कल्प क्रिया अपने आप भी की जा सकती है। जैसे चंद्रायण व्रत को पंद्रह दिन पूर्ण आहार तक आने में लगते हैं, उसी प्रकार एक सप्ताह उपवास और एनीमा द्वारा सफाई करके, एक सप्ताह साधारण स्थिति तक आने में लगाना चाहिए।

खतरा उपवास करने में नहीं वरन् उसके तोड़ने में है। बस्ति और व्रत के पश्चात् पेट बहुत ही कोमल हो जाता है, उस अवस्था में यदि भारी, स्थूल कब्ज करने वाली खुराक अधिक मात्रा में ले ली जाये, तो बड़ी हानि होने की संभावना है। इसलिए धीरे-धीरे उपवास तोड़ना चाहिए, क्रमानुसार खुराक बढ़ानी चाहिए। पहले-पहल वही फलों का रस लेना चाहिए। दूसरे दिन यह मात्रा

और भी बढ़ावें। तीसरे दिन गूदेदार रस लें जैसे—सेव, पपीता, शहतूत, फालसे आदि। चौथे दिन हल्के दर्जे के फल पर आ सकते हैं जैसे खजूर, खरबूजा, टमाटर, गाजर, जामुन, आम, बेर आदि। पाँचवें दिन उबाली हुई या कच्ची तरकारियाँ लेनी चाहिए। छठे दिन हल्की एक-दो गेहूँ की रोटी, दलिया या चावल, शाक, तरकारी के साथ लेने चाहिए। इस प्रकार एक सप्ताह में साधारण श्रेणी के आहार तक पहुँचना चाहिए। इस सप्ताह में दूध नित्य लिया जा सकता है। धारोष्ण ताजा दूध सबसे अच्छा है। यदि अधिक देर का कढ़ा हुआ हो, तो उसे गरम कर लेना चाहिए। बहुत देर तक खौलते रहने की जरूरत नहीं है। अधिक गरम करने से उसके पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं और वह भारी, कब्ज करने वाला तथा दस्तावर बन जाता है। दूध में मीठा मिलाने की कुछ जरूरत नहीं है, क्योंकि दूध में तो वैसे ही पर्याप्त मिठास होती है। हाँ मट्ठा के साथ थोड़ा नमक मिलाया जा सकता है। एक साथ कई चीजें मिलाकर न खाना चाहिए। कई दाल, कई शाक, मिठाई, चटनी, अचार, फल, दूध, दही, रोटी, चावल आदि बहुत-सी चीजों का घपला न तो ठीक तरह पचता ही है और न उससे ठीक रक्त ही बनता है। चाहिए तो एक समय में एक ही चीज खाना, पर अधिक से अधिक दो चीजें ली जा सकती हैं, रोटी-साग, दलिया-मट्ठा, दूध-चावल या ऐसे ही किन्हीं दो चीजों का मिश्रण दिया जा सकता है।

ऊपर जिस एनीमा और उपवास का वर्णन किया गया है। यह सफाई यदि साल में एक बार कर ली जाय और आहार-विहार में प्रकृति अनुकूल आचरण करने का अधिक से अधिक ध्यान रखा जाये, तो खोया हुआ स्वास्थ्य निस्संदेह पुनः प्राप्त किया जा सकता है और अनेक रोगों की जड़ को काटकर उन्हें सदा के लिए विदा किया जा सकता है। यह समझा जाता है कि आज की परिस्थितियों में पूर्ण रूप से प्रकृति के अनुकूल आहार-विहार रखना कठिन है। इन कठिनाइयों के बावजूद भी हमें यथाशक्ति अपने आचरण में प्रकृति का पक्षपात अधिक से अधिक करना चाहिए और अस्वाभाविकता एवं

कृत्रिमता से जितना बचा जा सके, उतना बचना चाहिए। इस दिशा में जितनी सफलता प्राप्त कर ली जायेगी, उतनी ही अधिक आरोग्यता प्राप्त होगी। दवाओं से नहीं, जीवन-क्रम को सात्विक और नैसर्गिक रखने से उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होगा। शरीर ऐसे तत्त्वों का बना हुआ है कि यदि इसके अंदर जमे हुए विषों को एक बार साफ कर दिया जाये, तो वह आगे अपनी स्थिति को ठीक रखने के लिए अधिक तीव्र गति से प्रयत्न करता है।

स्वाभाविक स्वास्थ्य को प्राप्त करने और उसे कायम रखने से शरीर की स्थिति बहुत अच्छी हो जाती है। त्वचा पर कांति, चैतन्यता, स्फूर्ति, उत्साह, प्रसन्नता, साहस, पुरुषार्थ परिश्रम में रुचि, बल, सहन शक्ति, इंद्रियों की कार्य क्षमता का कायम रहना यह सब निरोगता के स्वाभाविक लक्षण हैं। जिनका स्वास्थ्य ठीक होगा उसमें यह सब लक्षण अपने आप रहने लगेंगे। स्वास्थ्य बिगड़ने के साथ-साथ इन लक्षणों में कमी आती है और उसमें सुधार होने के साथ-साथ ये सब बातें बढ़ती जाती हैं। शरीर की सफाई कर डालने और उसके बाद आहार-विहार पर प्राकृतिक नियम के अनुकूल पूर्ण संयम रखने से निस्संदेह निश्चयपूर्वक स्वाभाविक स्वास्थ्य प्राप्त होगी और उस स्वस्थता के अनुरूप शारीरिक उन्नति के आशा, आनंद और संतोषदायक लक्षण प्रकट होने लगेंगे, शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है, वह असाधारण है अनिर्वचनीय है। आज के टूटे-फूटे सड़े-गले स्वास्थ्य की तुलना में वह आनंदमय स्वाभाविक स्वास्थ्य की स्थिति एक प्रकार का कायाकल्प ही है। वह कायाकल्प हर किसी के लिए संभव है, इसमें किसी औषधि की नहीं वरन् आत्म संयम, इंद्रिय निग्रह, कृत्रिमता का परित्याग और प्रकृति के अनुकूल आचरण करने की आवश्यकता है। थोड़ा साहस करके पाठकों को इस दिशा में कदम उठाना चाहिए, जो जितने अंशों में इस मार्ग पर चल लेगा, उसे उसी अनुपात से कायाकल्प का सुख प्राप्त होगा।

□ □

शरीर-शुद्धि और कायाकल्प

पिछले पृष्ठों में भीतरी सफाई रखने और आहार-विहार की प्रकृति के अनुकूल व्यवस्था करने का आदेश दिया गया है। उस आचरण का तुरंत ही स्वास्थ्य के ऊपर असाधारण प्रभाव पड़ता है। शरीर में भारीपन, उदासी, थकावट, हड़फूटन पड़ रही हो, तो उपवास, फलाहार और एनीमा के द्वारा उसी दिन शरीर की गिरी हुई अवस्था में मदद मिल सकती है। छोटे रोगों में तुरंत ही लाभ मालूम देता है। चिकित्साशास्त्र में भी रोग के आदि में लंघन करने का उपवास का आदेश किया है। एक प्रसिद्ध कहावत है कि 'बीमारी को भूखा मारो'। भूखा रहने से रोगी नहीं मरता, पर बीमारी मर जाती है। एनीमा लेते ही शरीर हल्का होता है। सिर दर्द, जुकाम, अरुचि, पेट का दर्द, अफरा, हिचकी जैसे रोगों में एनीमा का चमत्कार तुरंत ही दिखाई देता है। जूड़ी-बुखारों में पेट की सफाई कर देने से ज्वर की गतिविधि पर असाधारण नियंत्रण हो जाता है।

कायाकल्प के लिए एक सप्ताह, पंद्रह दिन या बीस दिन का समय जो लोग न निकाल सकें, वे एक-दो दिन का प्रयोग भी बीच-बीच में करते रहें, तो उनके स्वास्थ्य की गतिविधि ठीक प्रकार चलती रह सकती है। अमावस्या, पूर्णमासी या दोनों एकादशी इस कार्य के लिए ठीक हो सकती है। एक रविवार बीच में छोड़कर दूसरे रविवार को शरीर शुद्धि का क्रम रखा जा सकता है। सप्ताह में एक बार रविवार या सोमवार या कोई और दिन भी सुविधानुसार नियत कर सकते हैं। जिस दिन शरीर शुद्धि करनी हो, उस दिन प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत होकर एनीमा लेना चाहिए और उपवास करना चाहिए। अच्छा तो यह है, कि उस दिन नीबू या नमक मिले पानी के अतिरिक्त और कुछ न लिया जाये, पर यदि भूख असह्य हो और इच्छा शक्ति की कमी के कारण नित्य खाने

की आदत को न भुलाया जा सके, तो तीसरे पहर रसीले फलों को थोड़ा फलाहार कर लेना चाहिए। अधिक जरूरत मालूम पड़े, तो थोड़ा-सा दूध भी लिया जा सकता है। उपवास के दिन पानी खूब पीना चाहिए। जिन्हें रुचिकर होता हो, वे सोडा या लैमन पी सकते हैं। उपवास के दिन शारीरिक विश्राम के साथ बिताना चाहिए। भूखे पेट अधिक मेहनत करने से शरीर को थकावट आती है और उपवास से जो शक्ति संचय होनी चाहिए, वह नहीं हो पाती। उपवास के दूसरे दिन हल्का, सादा सात्त्विक एवं सुपाच्य भोजन कुछ कम मात्रा में करना चाहिए। यद्यपि दूसरे दिन भूख खूब लगती है और पेट खाली हो जाने से उसमें अधिक अन्न भरे जाने की गुंजायश भी हो जाती है। यदि पाचन शक्ति की शिथिलता का ध्यान न रखकर खाली पेट और भूख की तीव्रता के अनुपात से अधिक आहार कर लिया जाये, तो अपच हो जायेगा और उपवास का सारा महत्त्व ही नष्ट हो जायेगा।

यह स्मरण रखना चाहिए कि उपवास करने में उतनी सावधानी की जरूरत नहीं है, जितनी उपवास तोड़ने में है। उपवास काल में केवल अपने चटोरेपन से और नित्य खाने की आदत से विरोध करना पड़ता है। पेट की वास्तविक स्थिति में उपवास से राहत मिलती है। इसके विपरीत उपवास के अंत में पेट की भूख अधिक उत्तेजना उत्पन्न करती है। पेट भारी होने पर आदत से निपट लेना आसान है, पर पेट का खाली होना, विश्राम के बाद जगी हुई भूख तथा नित्य भर पेट खाने की आदत इन तीनों से निपटना कठिन होता है। उस समय अधिक विवेक, बुद्धि तथा संयम की आवश्यकता पड़ती है, उपवास के बाद न तो पेट भर खाना चाहिए और न गरिष्ठ, देर में पचने वाले खाद्य-पदार्थ लेने चाहिए। एक दिन उपवास दूसरे दिन का पहला भोजन, इतनी डेढ़ दिन की एक उपवास की मर्यादा है। डेढ़ दिन में एक छोटा उपवास पूरा होता है। पेट का भारीपन कम न हो तो उपवास के दिन शाम को भी तथा दूसरे दिन सबेरे भी एनीमा लिया जा सकता है,

लेकिन जिनका पेट एक ही एनीमा में ठीक प्रकार साफ हो जाय उनको कई बार लेने की जरूरत नहीं है।

यह छोटी शरीर शुद्धि कम से कम महीने में एक बार तो अवश्य ही कर लेनी चाहिए। क्वार और चैत्र के महीने में जबकि बीमारियों के उभार की ऋतु आती है, इस प्रकार की शरीर शुद्धि बहुत ही आवश्यक है। जिन दिनों चेचक, हैजा, प्लेग, मलेरिया आदि रोगों के फैलने की संभावना हो उन दिनों तो यह सफाई कर लेना अपने को बीमारियों से बचा लेने का बहुत ही सुगम और प्रामाणिक तरीका है।

एनीमा के अभाव में तत्काल दस्त करने के लिए एक तरीका यह है कि गुदा मार्ग के भीतर एक छोटे अच्छे साबुन का टुकड़ा या नमक की एक डली पहुँचा दी जाय। थोड़ी देर में बड़ी आँत का मल दस्त रूप में बाहर निकल जाता है। दस्तावर दवाएँ आमाशय एवं छोटी आँतों पर अधिक प्रभाव डालती हैं। बड़ी आँत जो कि मल संचय का मुख्य स्थान है, दस्तावर दवाओं से अधिक प्रभावित नहीं होता, परंतु एनीमा या मल द्वार से भीतर पहुँचाये हुए साबुन के टुकड़े का प्रभाव बड़ी आँतों पर होता है और वहाँ के संचित मल की सफाई हो जाती है, परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि अच्छा तरीका एनीमा का ही है। साबुन आदि से आँत पर उत्तेजना पड़ती है और उसमें से पानी निकलता है, उस पानी के प्रवाह में दस्त हो जाता है। इसलिये वह सर्वथा हानि रहित नहीं है। इसलिए इस तरीके को सदा काम में न लाना चाहिए। हाँ, विशेष अवसर पर यह भी एक तरीका है, जो काम में लाया जा सकता है।

शरीर शुद्धि के लिए भीतरी और बाहरी दोनों तरीके काम में लाना चाहिए। पेट को साफ रखना लाभदायक है, पर साथ ही बाहरी सफाई का भी पर्याप्त ध्यान रखना चाहिए। त्वचा को खूब रगड़-रगड़ कर ताजे पानी से स्नान करना चाहिए, जिससे रोम कूप भली प्रकार खुल जाएँ और मैल जमा न रहे। नाक, कान, आँख, मुख, दाँत तथा मल-मूत्र के छिद्र इनकी सफाई का भी पूरा ध्यान रहना चाहिए। कपड़े धुले हुए रहें। शरीर से छूने वाले कपड़े नित्य धोने चाहिए।

बिस्तरों को नित्य धूप लगानी चाहिए। रहने के स्थान में सफाई का धूप तथा हवा की पहुँच का पूरा विचार रहना चाहिए। खान-पान में जितनी सफाई रह सके उतना ही अच्छा है। स्मरण रखिये—सफाई में निरोगता है और दीर्घ जीवन निरोगता के ऊपर निर्भर है।

अंग-प्रत्यंगों का शोधन, पोषण, विकास तथा पुष्टत्व के लिए एक बहुत ही अच्छा तरीका "मालिश" है। मालिश करने से अंग प्रत्यंगों की छोटी-छोटी मांसपेशियों का भी अच्छा एवं उचित व्यायाम हो जाता है। साधारण व्यायाम से किन्हीं मांस-पेशियों पर तो बहुत अधिक दबाव पड़ता है और किन्हीं पर बिल्कुल नहीं पड़ता, किंतु मालिश में हर एक पेशी पर हल्के ढंग का गुदगुदा हुआ हाथ पड़ता है, जिसमें वहाँ की नस, नाड़ियों, ज्ञान तंतु, मज्जा, स्नायु, मांसपेशी एवं अस्थि-संस्थान पर यथोचित रीति से दबाव पड़ता है। हाथ की हल्की रगड़ से एक विद्युत् धारा का संचालन होता है, जिससे नियत अंगों में उत्तेजना उत्पन्न होती है। पहलवान लोग जितना महत्त्व व्यायाम को देते हैं, उतना ही मालिश को देते हैं। कोई भी पहलवान ऐसा न होगा, जो शरीर की मालिश न करता हो। तेल की मालिश करने में तेल का उपयोग इसलिए किया जाता है, ताकि हाथ ठीक प्रकार फिसलता रहे, चमड़े पर रगड़ न पड़े तथा बाल न टूटें। इन तीन लाभों के अतिरिक्त और जो कुछ लाभ होता है वह सब मालिश का है।

मालिश से रोगों की चिकित्सा में बड़ा महत्त्वपूर्ण लाभ होता है। सिर दर्द में सिर दबाने की प्रथा सर्वविदित है। रास्ता चलने से थके हुए लोगों के पैर दबाये जाते हैं। पेट में दर्द हो तो पेट पर हाथ फेरने का उपचार होता है। दर्द के स्थानों में तेल की मालिश करना चिकित्सक लोग बताते हैं। कमजोर प्रसूता स्त्रियों को तेल मालिश कराई जाती है। नवजात शिशुओं को तेल लगाना दैनिक कार्य होता है। नपुंसकता के रोगी तिलाओं की मालिश करते हैं। विदेशों में 'मर्दन-चिकित्सा' का अब बड़ा प्रचार हो चला है। वहाँ मालिश द्वारा कठिन रोगों के इलाज किये जाते हैं। हमारे देश में मोच, हड्डी टूटना, चोट, गठिया, नाभि डिगना आदि रोगों की

मालिश द्वारा चिकित्सा करने वाले बहुत ही चिकित्सक मौजूद हैं। कई तो उनमें से ऐसे हैं; जो संग्रहणी, तपैदिक, दमा जैसे कठिन रोगों का मालिश के आधार पर इलाज करते हैं। सिर की मालिश करने वाले कुछ लोग अपनी कला में बड़े प्रवीण होते हैं और अपने हस्त-कौशल से सिर का आराम पहुँचाने की मजदूरी द्वारा काफी पैसे कमाते हैं।

महात्मा गाँधी इस वृद्धावस्था में इतना अधिक परिश्रम करते थे। वे शक्ति प्राप्त करने के लिए नित्य दो घंटे तेल की मालिश कराते थे। प्राकृतिक चिकित्सा में मालिश का बहुत बड़े विस्तार से गुणगान किया गया है। कायाकल्प के इच्छुकों को अपने दैनिक कार्यक्रम में मालिश के लिए थोड़ा बहुत स्थान अवश्य रखना चाहिए। कोई सहयोगी मिल सके, तो आपस में एक-दूसरे की सहायता से शरीर के हर एक अंग को तेल मालिश करनी चाहिए। जो लोग नौकरों से या घर वालों से यह कार्य ले सकते हैं, वे वैसा कर सकते हैं। जिन्हें दोनों में से एक भी साधन न मिले, तो स्वयं अपने हाथ से करें। पीठ का कुछ थोड़ा हिस्सा ऐसा रह जाता है कि जिसकी अपने हाथ से ठीक प्रकार मालिश नहीं हो सकती, परंतु जितने की हो सकती है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसलिए जिन्हें मालिश में अन्य किसी का सहयोग न मिल सके, उन्हें स्वयं अपने हाथ से करनी चाहिए। तेल मालिश के १५-२० मिनट बाद स्नान करना चाहिए। स्नान के समय मोटे खुरदरे तौलिये से शरीर को रगड़ डालने से चिकनाई छूट जाती है और कपड़े खराब होने का डर नहीं रहता। मालिश के समय हाथ का दबाव हृदय की ओर अधिक रहना चाहिए। धड़ के निचले भाग को मलते समय नीचे से ऊपर की ओर रगड़ लगानी चाहिए। सिर, कंधे, गरदन आदि को रगड़ते समय रगड़ सीने की तरफ अधिक रहनी चाहिए। वैसे तो नीचे-ऊपर दोनों ओर ही मलना चाहिए, पर हाथ हल्का और कड़ा रखने में हृदय की दिशा का स्मरण रखना चाहिए। मालिश करने का स्वास्थ्य पर बहुत ही अच्छा असर पडता है।

उपरोक्त रीतियों के अनुसार आचरण करने से बिना औषधि के कायाकल्प हो सकता है। कमजोर-बलवान् हो सकते हैं और रोगी अपने रोगों से पीछा छुड़ा सकते हैं। दवाओं का कायाकल्प अस्थायी होता है, पर प्राकृतिक रहन-सहन के अनुसार सुधारा हुआ स्वास्थ्य चिरकाल तक टिकाऊ रहता है।

हर एक स्वास्थ्य सुधार के इच्छुक को एक बात विशेष रूप से ध्यान रखनी चाहिए कि इस विषय में अति कल्पना में न उड़े अधिक मनमोदक न बाँधे। साधारणतः रोगी न होना और शारीरिक व्यापार का ठीक चलते जाना यह भी कम संतोष की बात है। मनुष्य समाज तो जिस अप्राकृतिक आहार-विहार और रहन-सहन को अपना रखा है, वह इसी योग्य है कि सदा रोगों के चंगुल में जकड़ा रहना पड़े। अनेकानेक प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों का आविष्कार हो चुका है। चिकित्सा की दुकानें लाखों-करोड़ों मन दवाओं से पटी पड़ी हैं। पर इससे स्वास्थ्य सुधार में तनिक भी प्रगति नहीं हो रही है। प्रायः ९५ प्रतिशत मनुष्य छोटे-बड़े रोगों से ग्रस्त हैं, पूर्ण स्वस्थ मनुष्य तलाश करना हो तो असाधारण प्रयत्न करना पड़ेगा। जो लोग मोटे और मजबूत दिखाई पड़ते हैं, तलाश करने पर उनमें भी कई तरह के रोग निकलते हैं। ऐसी दशा में वर्तमानकाल के अप्राकृतिक आहार-विहार में अच्छे स्वास्थ्य की परिभाषा यही हो सकती है कि शरीर कष्ट से विमुक्त रहे और जीवन क्रम चलाने योग्य जीवनी शक्ति प्राप्त होती रहे। इतने के लिए भी करोड़ों मनुष्य तरसते हैं। इस पुस्तक में बताये हुए विधान में आंशिक आचरण करने वाले मनुष्य भी निरोगता प्राप्त कर सकते हैं और जीवन चक्र को ठीक प्रकार चलाने योग्य जीवन शक्ति प्राप्त करते रह सकता है। आज की स्थिति में इतना सब होना भी कायाकल्प से किसी प्रकार कम नहीं है।